एम.ए.एच.आई. -01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 01 - विश्व इतिहास
(मध्यकालीन समाज एवं क्रांति का युग) - 3

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

खण्ड-3

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 10 यूरोप में औद्योगिक अर्थव्यवस्था : कृषि और उद्योग, व्यापारी और व्यापारिक संघों के मध्य संबंध	5–19
इकाई 11 उदारवाद और यूरोप में संवैधानिक विकास	20–36
इकाई 12 अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन	37–49
इकाई 13 औद्योगिक क्रांति	50–61

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. एन.के. शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)

डॉ. सुरेश शर्मा
सोवियत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डा. अनूप सिंह पवार
पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय
पाली (राज.)

डा. जे.पी. मिश्रा
इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - Oct 2012 MAHI-01/ISBN No.-13/978-81-8496-260-4

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई -10

यूरोप में औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था: कृषि और उद्योग, व्यापारी और व्यापारिक संघों के मध्य सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय

10.3 प्रेरक तत्व

10.4 कृषि और उद्योग

10.5 व्यापारी और व्यापारिक संघ

10.6 सारांश

10.7 बोध प्रश्न

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे:

- यूरोपीय औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय :
- औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के प्रेरक तत्व जिनमें जनसंख्या में वृद्धि; राष्ट्रवाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ तथा वित्त और व्यापार संगठन का विकास उल्लेखनीय है;
- यूरोपीय कृषि की स्थिति एवं इस क्षेत्र में हुए परिवर्तन, इन परिवर्तनों का व्यापार एवं उद्योग को लाभ;
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका;
- व्यापारिक संघों का स्वरूप, आदि ।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यूरोपीय औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय एवं उसके प्रेरक तत्वों से परिचय कराया जायेगा । औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के प्रेरक तत्वों में जनसंख्या में वृद्धि राष्ट्रवाद, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, राष्ट्रीय और व्यापार नीतियाँ, वित्त और व्यापार संगठन का विकास आदि प्रमुख है । इसके अतिरिक्त इस इकाई में यूरोप में कृषि एवं उद्योग की स्थिति तथा व्यापारी और व्यापारिक संघों के मध्य सम्बन्धों का विवेचन किया गया है ।

10.2 औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय

18 वीं सदी में यूरोपीय महाद्वीप औद्योगिक रूपान्तरण की प्रक्रिया से होकर गुजरा क्योंकि इस सदी में औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन करके तत्कालीन एवं

परवर्ती अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित किया । इस समय ऊर्जा तथा शक्ति के उत्पादन की नवीन तकनीकों का आविष्कार हुआ और उनका उद्योगो में भी उपयोग किया गया । उदाहरण के लिए, सर्वप्रथम 1705 में टॉमस न्यूकोमैन और फिर 1769 में जेम्स वॉट ने भाप के इंजन की खोज की जिसके परिणामस्वरूप जलशक्ति और पवन चक्कियों के स्थल पर भाप की शक्ति का उपयोग क्रमश: बढ़ता ही गया । लोहा तैयार करने की नवीन तकनीकों से श्रम तथा पूंजी के प्रति-इकाई उत्पादन में वृद्धि हुई । पुरानी पद्धति में जहां कच्चे लोहे को काठ-कोयले की सहायता से पिघलाया जाता था वहाँ नवीन पद्धति में उसे वात्या-भट्टी (Blast furnace) से कोयला जलाकर लोहा पिघलाया जाकर उसे ढालने की विधि का आविष्कार हुआ । ऊन और सूत की कताई और बुनाई की नई-नई मशीनों का अविष्कार हुआ, जैसे - जॉन के की फलाईग शटल (1733), जेम्स हारग्रीव की कताई की स्पिनिंग जैनी (1770) रिचर्ड ऑकराइट का वाटर फ्रेम (1769) ,कार्टराइट का पावरलूम (1787) । 1785 में पहली बार वॉट के भाप के इंजिन का प्रयोग सूत कातने में किया गया । इसके पूर्व पनचक्की से चलने वाली मशीनों से सूत काता जाता था, इसलिए अधिकांश कुटीर उद्योग नदियों के किनारे फैले हुए थे । अब सूती-वस्त्र उद्योग कुटीरसे हटकर बड़े-बड़े नगरों के विशाल कारखानों में केन्द्रित हो गया । 1770-1800 के मध्य हुए आविष्कारों के कारण सूती वस्त्र उद्योग में दस गुना वृद्धि हुई ।

औद्योगिक क्रांति के समय कृषि के विकास से नवीन उद्योगों के विकास में बडी सहायता मिली । इस समय बेकार भूमि को कृषि योग्य बनाया गया तथा फसलों के क्रमवार उत्पादन से भूमि को खाली छोड़ना बन्द कर दिया गया जिससे प्रति एकड़ उपज में वृद्धि हुई । कृषि के विकास के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या में उत्पन्न सामाजिक सन्तोष ने औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के विकास में अपूर्व योगदान दिया । मशीनों के आविष्कार से जहाँ एक ओर उत्पादन में वृद्धि हुई वहाँ दूसरी और उत्पादन लागत में भी कमी आयी ।

19वी शताब्दी में अनेक परिवर्तनों ने यूरोपीय औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था को नवीन रूप में ढाल लिया जिससे औद्योगिकरण की गति तीव्र हुई बाजार अर्थ-व्यवस्था का विस्तार हुआ इन परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी प्रकट हुए । ये प्रवृत्तियॉ सम्पूर्ण यूरोप में दिखायी दीं, परन्तु यह इस महाद्वीप के पश्चिमी भाग में अधिक प्रबल थी, दक्षिणी और पूर्वी भागों में अपेक्षाकृत कम । पश्चिमी यूरोप का औद्योगिकरण 1830- 1870 तक के चार दशकों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी । इस अवधि में कई यूरोपीय देशों ने व्यापक बाजार के लिए औद्योगिक उत्पादन प्रारम्भ किया । ऐसा करने के लिए उन्होंने घरेलू औद्योगिक उत्पादन के तरीके छोड़ दिए और विशाल कारखाने लगाये, औद्योगिक प्रणाली के निर्माण के लिए नवीन आविष्कार किए, कच्चे माल का आयात किया अथवा अपने संसाधनों का विकास किया और तैयार माल को अपने देश अथवा विदेश में बेचने लगे । इन परिवर्तनों के कारण खेतिहर समाज का आंशिक ह्रास हुआ और ग्रामीण मजदूरों का नगरों की ओर प्रस्थान हुआ ।

औद्योगिक परिवर्तन 1830-1870 तक

सर्वप्रथम ब्रिटेन और फिर सम्पूर्ण यूरोप में वस्त्र-उद्योग के क्षेत्र में धरेलू उत्पादन के स्थान पर कारखानों के माध्यम से उत्पादन प्रारम्भ हुआ । खनन और धातु कार्य में भी नवीन

तरीके अपनाए गए । परिवहन तथा संचार के क्षेत्र में क्रांति हुई । औद्योगिक परिवर्तन का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ था वह 1830 के पश्चात् पश्चिम से पूर्व तथा दक्षिण की ओर आगे बढ़ा और 1880 तक आते-आते यूरोप में एक औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था की नींव रखी जा चुकी थी ।

औद्योगिक क्रांति (परिवर्तनों) ने सर्वप्रथम वस्त्र-उद्योग को प्रभावित किया, सूती 'वस्त्रों के पश्चात् ऊनी वस्त्र-उद्योग में एक प्रकार से क्रांति आई । इसके साथ ही साथ खनन और लोह-निर्माण की उन्नत विधियाँ भी द्रुत गति से प्रचलित हुई । परन्तु इन औद्योगिक परिवर्तनों के उपरान्त भी अनेक उद्योग इन नवीन विधियों से प्रभावित नहीं हो पाए, जिनमें खाद्य-सामग्री, कपड़ो की सिलाई और फर्नीचर-निर्माण के उद्योग शामिल थे । औद्योगिक विकास एवं परिवर्तन की विषमता का एक पक्ष यह था कि नए-नए उद्योग उत्तरी फ्रांस, दक्षिण बेल्जियम और जर्मनी की सार घाटी में केन्द्रित हो गए, जबकि इन देशों के अन्य भागों में पुरानी अर्थ-व्यवस्था भी बनी रही । परिणमत: यूरोप के औद्योगिक देशों में आधुनिक और परम्परागत अर्थ-व्यवस्थाएं साथ-साथ विद्यमान रहीं ।

यूरोपीय देशों में यह औद्योगिक विकास सर्वप्रथम पश्चिम एवं फिर पूर्व तथा दक्षिण की तरफ फैला । 1850 तक बेल्जियम एक औद्योगिक देश बन चुका था । उसने ब्रिटिश औद्योगिक अर्थव्यवस्था की निपुणता एवं प्रबन्ध-कौशल का बड़े पैमाने पर उपयोग किया । प्रारम्भ में बेल्जियम ही यूरोप के वाष्प-चालित कारखानों के लिए कोयले की आवश्यकता पूरी करता था ।

बेल्जियम के पश्चात् फ्रांस का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ और 1870 तक फ़्रांसीसी उद्योग ने भी नवीन स्वरूप प्राप्त कर लिया । फ्रांस में वाष्प-इंजन का प्रयोग 1830 में प्रारम्भ हुआ और दस वर्ष पश्चात् फ्रांस में ही उसका निर्माण होने लगा था । 1848 तक सूती और रेशमी वस्त्र उद्योगों - के मशीनीकरण के साथ-साथ औद्योगिक नगरों की स्थापना हुई । ऊनी वस्त्र-उद्योग का मशीनीकरण 1850 के पश्चात् प्रारम्भ हुआ । लेकिन फ्रांस में कच्चे माल की कमी और उद्योगपतियों की हिचकिचाहट के कारण औद्योगिकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कुछ धीमी रही । परिणामस्वरूप सरकार को इस दिशा में विशेष सक्रिय कार्य करने पड़े । सरकार ने संचार साधनों का विकास किया, बैंक स्थापित किए और गैर-सरकारी कम्पनियों को अधिक सहायता प्रदान की । 1870 तक आते- आते फ़्रांसीसी उद्योग 1851 की तुलना में पांच गुना बढ़ गए और उसकी कोयले की खसपत तिगुनी हो गयी । लोहे का उत्पादन भी 1867 तक तीन गुना बढ़ गया ।इन प्रयासों के परिणामस्वरूप फ़्रांसीसी औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का तेजी से विकास हुआ और 1830 और 1870 के बीच फ़्रांसीसी विदेश व्यापार में तीन गुना विस्तार हुआ ।

जर्मनी का औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ । इसके कारण थे 1870 तक उसमें राजनीतिक एकता का अभाव, अविकसित संचार व्यवस्था, खनिज भण्डार देश की सीमाओं पर स्थित होना एक बड़े पूँजीपति वर्ग का अभाव । लेकिन इनमें से अधिकांश समस्याओं का हल 1870 तक कर लिया गया था । राजनीतिक एकता प्राप्त कर ली गई,

उद्योगों में निवेश के लिए पूँजी संचित कर ली गई तथा परिवहन व्यवस्था को विकसित किया गया; 1862 तक 18 हजार मील लम्बी सड़के बन गयी और 1850-1870 के बीच विशाल रेलमार्ग निर्माण का कार्यक्रम बनाया गया । इसके साथ ही वस्त्र -उद्योग और भारी उद्योगों का मशीनीकरण भी चलता रहा । 1850-70 के बीच जर्मनी ने अपना कोयला-उत्पादन दस गुना बढ़ा लिया ।

रूस में औद्योगिक क्रांति (परिवर्तन) का प्रारम्भ अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में देर से हुआ । 1860 तक रूसी उद्योग में कृषि -अर्थ व्यवस्था में विस्तार के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की प्रगति नहीं हुई थी, परन्तु संचार व्यवस्था का विकास हो रहा था और रेल-मार्ग बन रहे थे । रेल-तन्त्र के निर्माण कार्यक्रम से जो माँग पैदा हुई, उसे पूरा करने के उद्देश्य से वहाँ पर 1860 के बाद उद्योगों का विकास होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप 1860-70 के बीच कोयला का उत्पादन सोलह गुना और इस्पात का उत्पादन दस गुना बढ़ गया । 1860 में स्टेट बैंक की स्थापना हुई और इसी वर्ष इसने उद्योगों के लिये पूँजी उपलब्ध करायी तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान भी चलाने प्रारम्भ किए । पोलैण्ड में 1870 के प्रारम्भ में औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ ।

इस प्रकार पश्चिमी यूरोप में वस्त्र उद्योग का व्यापक मशीनीकरण हुआ और उससे छोटे पैमाने पर दक्षिणी और पूर्वी यूरोप में यह मशीनीकरण हुआ । वाष्पशक्ति इन कारखानों में शक्ति का मुख्य साधन बन गयी । खनन और विभिन्न धातुओं की आधुनिक पद्धतियों का द्रुत गति से विस्तार हुआ, परिणामस्वरूप कारखानों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये कच्चे माल के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई और कारखानों से अत्यधिक तैयार माल बनकर बाजार में आने लगा । कारखानों को कच्चा माल भेजने और तैयार माल के लिए स्वदेशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शुरू में नहरों के रूप में, फिर सड़को और अन्ततः रेलमार्गो के रूप मैं विस्तृत संचार व्यवस्था का विकास हुआ । 1870 तक बड़े यूरोपीय देशों में मुख्य रेलमार्गो का जाल बिछ गया था, डाक-तार व्यवस्था विकसित हो गई थी और वाष्प- जहाज समुद्रपार की मण्डियों तक आने-जाने लगे थे । परन्तु इन औद्योगिक परिवर्तनों के बावजूद 1870 तक कोई भी यूरोपीय देश उन्नत औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के स्तर तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि अभी भी अधिकांश देश औद्योगिक परिवर्तनों से दूर थे ।

1870 तक औद्योगिक परिवर्तनों के कारण व्यापारिक परिवर्तन द्रुतगति से होने लगे और विभिन्न देशों के भीतर और बाहर व्यापार का विस्तार हुआ । राजनीतिक एकीकरण के फलस्वरूप राष्ट्रीय बाजारों में वृद्धि हुई, नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई, संचार व्यवस्था का विकास हुआ जिससे इस प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहाजरानी के विकास तथा संरक्षण एवं मुक्त व्यापारिक नीतियों के प्रयोग से तैयार माल के निर्यात के बदले खाद्य-सामग्री और कच्चे माल के परिवहन को बढ़ावा मिला । इन उपलब्धियों के साथ ही साथ विपणन, व्यापार-संगठन तथा वित्त-व्यवस्था की पद्धतियों में जो परिवर्तन एवं विकास हुआ, उसे ओद्योगिक अर्थ-व्यवस्था कहते है ।

औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के तीन प्रमुख तत्व हैं, प्रथम तत्व है- आर्थिक संगठन । आर्थिक संगठन से अभिप्राय है पूँजी की उपलब्धि, कच्चे माल की प्राप्ति तथा उत्पादन की खपत के लिए आन्तरिक और विदेशी बाजारों का विकास । इस आर्थिक संगठन में दो प्रकार के परिवर्तन निहित थे- कुटीर उत्पादन से धीरे-धीरे पूँजीवादी उद्योगों की ओर अग्रसर होना, बिक्री के अनुसार उत्पादन तथा श्रमविभाजन के आधार पर कार्य करने वाले मजदूरों की नियुक्ति । मशीनों के अधिक उपयोग के लिये अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता थी । अत: बड़े पूँजीवादी उद्योगों की स्थापना आर्थिक संगठन का ही भाग है । दूसरा, परिवर्तन में ऐसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों का विकास था जहां से कच्चा माल, उत्पादन के अन्य सामान तथा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री हो सके । इस परिवर्तन का मूल था बाजारों का विकास जो अनेक संस्थाओं के सहयोग से सम्भव था, जिनमें सरकार के अतिरिक्त बड़े पूँजीवादी घराने, बैंक तथा आवागमन को संचालित करने वाले संघटन सम्मिलित थे । दूसरा तत्व है- तकनीकी अर्थात् निरन्तर ऐसे प्रयोग और आविष्कार किए जायें जिससे मानव श्रम का प्रयोग कम से कम हो । मशीनों को वाष्प, जल या वायु से चलाया जाय । उत्पादन में निरन्तर वृद्धि को खोजना भी तकनीकी क्षेत्र का कार्य था । दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक ज्ञान और अन्वेषण द्वारा उत्पादन और वितरण में विकास होना चाहिये । उत्पादन में कच्चे माल की खोज भी सम्मिलित है जिसके प्रयोग से वस्तुएँ सस्ती एवं प्रचुर मात्रा में बने सके । ऐसे कच्चे माल के प्रयोग का सुझाव भी तकनीकी विषय है ।

औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का तीसरा तत्व है - व्यापारिक ढाँचा अर्थात् भूमि, श्रम और पूँजी का कुशलता से उपयोग । इसके अतिरिक्त उत्पादन, अन्वेषण तथा सभी क्षेत्रों में गति बनाये रखना और अधिकाधिक पूँजी उपलब्ध कराने के प्रयास,
तन्त्र पर निर्भर करता है । उपर्युक्त तीनों के समन्वय से औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का सूत्रपात हुआ ।

10.3 प्रेरक तत्व

(1) जनसंख्या वृद्धि

सभी इतिहासकार इस पर एकमत हैं कि 1700 से 1800 के बीच यूरोपीय जनसंख्या में 48 प्रतिशत वृद्धि, के कारण बाजार का आकार एवं स्वरूप ' बदल गया । अधिकांश बाजार नगरों तथा उपनगरों में स्थित थे जो खाद्य-सामग्री तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए स्थान-विशेष पर केन्द्रित थे । 1830 और 1870 के बीच यूरोप के नगरों एवं उपनगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई । 1861 में 29 प्रतिशत तथा 1867 में जर्मनी में जनसंख्या में 36 प्रतिशत तक वृद्धि हुई । इन परिवर्तनों के साथ ही पश्चिमी यूरोप में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात घट गया । जर्मनी तथा फ्रांस में शहरीय जनसंख्या ग्रामीण जनसंख्या से आगे निकल गई । पूर्वी यूरोप की अपेक्षा पश्चिमी यूरोप का शहरीकरण पहले तथा बड़े पैमाने पर हुआ ।

जनसंख्या और औद्योगिक परिवर्तनों में सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है फिर भी इस तर्क में सत्यता है कि कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को खेती की सुविधा न रहने के कारण बड़े औद्योगिक शहरों के जीवन के योग्य अपनी आय को बढाने के लिये अधिक बच्चों

को जन्म देते थे जिससे अधिक काम करने वालो के द्वारा अधिक आय हो सकेगी । इसके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान में प्रति होने के कारण मृत्यु दर में भी कमी हुई । जहाँ पहले बच्चों के जीवित रहने की सम्भावना 40 प्रतिशत होती थी अब बढ़कर 60 प्रतिशत हो गई । जनसंख्या-वृद्धि में यह भी एक कारण था । इसके अतिरिक्त यूरोपीय युद्धों से आतंकित होकर भी बहुत से लोगों ने इंग्लैण्ड में शरण ली । इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि का इन औद्योगिक परिवर्तनो से भले ही सीधी सम्बन्ध न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों की कमी नहीं थी । इसके अतिरिक्त जनसंख्या का घनत्व दक्षिण-पूर्वी कृषि प्रधान क्षेत्रों के स्थान पर उत्तर पश्चिमी औद्योगिक क्षेत्रों की ओर बढ़ने लगा ।

इंग्लैण्ड के निवासियों का जीवन-स्तर अन्य देशों की तुलना में उच्च था । यहाँ घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की लिये पर्याप्त वस्तुओं की आवश्यकता थी । इंग्लैण्ड में प्रति व्यक्ति आय अन्य देशों की तुलना में अधिक थी । जीवन स्तर के विकास का लाभ भी उद्योगों को ही मिलता है । इसलिए इंग्लैण्ड में ही वस्तुओं की पर्याप्त माँग होने के कारण अधिक उत्पादन की तरफ ध्यान दिया गया । इंग्लैण्ड में वस्तुओं की अधिक मांग का कारण नगरीय जीवन का विकास भी था ।इंग्लैण्ड में नगरों का विकास उसके लीवरपूल, मेनचेस्टर, बर्मिधम तथा लीड्स जैसे औद्योगिक नगरों के कारण हुआ । इन औद्योगिक 'नगरों में जीवन -स्तर के विकास से वस्तुओं की मांग बढ़ी । अत: उद्योगों का विकास ' हुआ ।

इंग्लैण्ड के उपनिवेशों में धीरे-धीरे वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी । अत: अधिक उत्पादन की ओर ध्यान दिया गया । इस बढ़ती हुई माँग की पूर्ति नवीन आविष्कारों तथा मशीनों द्वारा ही की जा सकती थी । अत: यूरोप के लगभग सभी देशों में अधिक उत्पादन का प्रयत्न किया गया जो कि औद्योगिक विकास से ही सम्भव था ।

(2) राष्ट्रवाद

बाजारों के विस्तार में राष्ट्रवाद का प्रभाव इटली तथा जर्मनी में स्पष्ट दिखयी देता है क्योंकि इन राष्ट्रों के निर्माण में आर्थिक शक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था । मुक्त आन्तरिक व्यापारिक संघ शोलवेरिन (1834 में प्रशा के नेतृत्व में स्थापित जर्मन-राज्यों का सीमा-शुल्क संघ) के गठन से ऐसी ' जर्मन-अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ हुआ जिससे भविष्य में देश का एकीकरण सम्भव हो सका । नवीन राष्ट्रीय बाजारों एवं औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिये राष्ट्रीय परिवहन प्रणाली का विकास हुआ । इसके अन्तर्गत प्रारंभ में पक्की सड़कों में सुधार और नहरों के निर्माण को प्रमुखता दी गई, फिर वाष्पचालित रेल इंजिन एवं रेलमार्गो का निर्माण हुआ । 1830 के प्रारम्भिक दशक में फ्रांस, इटली, बेल्जियम और आस्ट्रिया में स्थानीय रेलमार्गो का निर्माण हुआ । 1840 के प्रारम्भ में जर्मन-राज्यों में रेलमार्गो का निर्माण प्रारम्भ: हुआ । 1870 के आते-आते सभी यूरोपीय देशों में मुख्य रेलमार्गो का जाल बिछ गया । इस रेलतन्त्र में राष्ट्रीय बाजार एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा किया । साथ ही लोह तथा इस्पात उद्योगों और कोयला-खनन के कार्य को प्रोत्साहन दिया । रेल-व्यवस्था के कारण अधिक वस्तुओं का परिवहन होने लगा और परिवहन दुतगति से होता था जिससे प्रतिस्पर्धा को बढावा मिला।

जैसे-जैसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाजार पर निर्भर होता गया, वैसे-वैसे संचार-व्यवस्था में भी सुधार हुआ । डाक-सेवाओं की स्थापना, तार-प्रणाली का प्रयोग एवं समाचार-पत्रों का चलन भी हुआ । इस संचार-व्यवस्था के कारण दूर-दूर स्थित बाजार आपस में जुड़ गए । अत: यूरोप में राष्ट्रीय बाजारों और औद्योगिक अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला ।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि

अन्तराष्ट्रीय व्यापार तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था के विकास का मुख्य कारण समुद्र पार जहाजरानी का विकास था । प्रारम्भ में जहाजों की संख्या बढ़ायी गई, फिर नौचालन-पोत सुधारने का प्रयत्न किया गया और 1850 के पश्चात् वाष्प-पोत के विकास को प्रमुखता दी गई । इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जहाजरानी सेवाओं में तीव्रता से विस्तार हुआ और यूरोपीय राष्ट्रों ने नवीन बाजारों की खोज तथा कच्चे माल को सामुद्रिक स्त्रोत से लाने के उद्देश्य से व्यापारी बेड़ों को महत्व देना प्रारम्भ कर दिया ताकि. स्वदेशी औद्योगिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सके । इस प्रकार 1870 तक विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों के बीच व्यापार में वृद्धि तथा संचार-व्यवस्था. में विकास का काल रहा ।

जब अन्तराष्ट्रीय व्यापार और संचार-व्यवस्था का विकास हुआ तब रूई, ऊन, लोहा और रबड़ जैसा कच्चा माल समुद्र पार से यूरोप में आयात करना सरल हो गया । अन्तराष्ट्रीय व्यापार के विकास के कारण यूरोप के तैयार माल के लिये समुद्रपार का महत्वपूर्ण बाजार अस्तित्व में आ गया जिससे आर्थिक गति बहुत तीव्र हो गई । अन्तराष्ट्रीय व्यापार से यूरोप में प्रति व्यक्ति उत्पादन बढाने में सहायता मिली, अत: यूरोप में आय और उपभोग भी बढ़ गया । पश्चिमी यूरोप के देशों में यह बात विशेष रूप से देखने को मिलती है क्योंकि 1870 तक ये देश आयात-निर्यात के विश्वव्यापी बाजार के साथ सम्बन्ध हो गए थे । इस समय ब्रिटेन ही एक ऐसा देश था जिससे विदेशी पूँजी मिल सकती थी, परन्तु कुछ अन्य यूरोपीय देशों-फ्रांस, जर्मनी'- में भी इस क्षेत्र में कुछ क्रियाशीलता दिखलाई पड़ी ।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि की एक अन्य विशेषता थी - यूरोपीय लोगों का विदेशों में प्रवास, विशेषतया उपनिवेशों में । 19वीं शताब्दी में फ्रांस ने औपनिवेशिक साम्राज्य खडा कर दिया जबकि हालैण्ड के पास पहले से ही ऐसा साम्राज्य था । परन्तु 1870 के पश्चात् समुद्रपार औपनिवेशिक क्षेत्रों पर स्वामित्व के कारण पूँजीनिवेश को बढावा मिला और नवीन बाजार खुले जिससे यूरोप में औद्योगिक अर्थव्यवस्था का सूत्रप्रात हुआ ।

(4) राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ

यूरोपीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था की एक 'अन्य विशेषता यह थी कि भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों ने अपनी राष्ट्रीय व्यापार एवं औद्योगिक नीतियाँ बना लीं । 1820 से 1850 तक यूरोपीय देशों ने संरक्षण नीति को इसलिए अपनाया कि उनके अपने देश के उद्योगपति एवं व्यापारी ब्रिटिश प्रतिस्पधाओं का सामना कर सकें । इसके पश्चात् ऐसा समय आया जब अधिकांश यूरोपीय देशों ने मुक्त व्यापार की नीतियाँ अपना कर अपनी औद्योगिक अर्थव्यवस्था को बढ़ाने का अवसर दिया । इस नीति के अन्तर्गत 1852 में बेल्जियम ने मुक्त व्यापार नीति

को अपनाया । प्रशा के शोलवेरिन ने 1853 में अनाज-शुल्क समाप्त कर दिया और आस्ट्रिया के साथ मुक्त व्यापार सम्बन्ध स्थापित किया । 1860 में नीदरलैण्ड ने मुक्त व्यापार अपना लिया और ब्रिटेन तथा फ्रांस ने मुक्त व्यापार संधि पर हस्ताक्षर किए । काबूर के आधीन पीडमाण्ट ने अनेक यूरोपीय देशों के साथ मुक्त व्यापार सम्बन्ध स्थापित किए ।

परन्तु 1870 के पश्चात् अन्तराष्ट्रीय आर्थिक प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत यूरोपीय राष्ट्र मुक्त-व्यापारिक नीति छोडने को बाध्य हुए क्योंकि इस प्रतिस्पर्धा के कारण स्वदेशी बाजार पर राष्ट्रीय नियन्त्रण तथा समुद्रपार के देशों में अपना प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना आवश्यक हो गया था । खराब फसलों, कम कीमतों और समुद्रपार के कृषि उत्पादनों में भारी आयात के कारण यूरोपीय कृषि में मन्दी आयी, तब कृषक वर्ग ने राज्य से संरक्षण नीति की माँग की । उद्योगपतियों ने भी अपने-अपने उद्योगों को बाहरी प्रतिस्पधाओं से बचाने के लिए कृषक-वर्ग की इन माँगों का समर्थन किया । परिणामस्वरूप 1870 के पश्चात् अधिकांश यूरोपीय राष्ट्रों ने अपनी अपनी औद्योगिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने तथा विश्वव्यापी मन्दी का सामना करने के लिये आयात शुल्क को पुन: लागू किया । जब यूरोपीय राष्ट्रों के व्यापक बाजार बन गये, तब वस्तुओं की माँग बढ़ने लगी, इससे विपणन-विधियों में सुधार करना आवश्यक हो गया ।

(5) बिल और व्यापार संगठन का विकास

यूरोपीय देशों में बढती हुई औद्योगिक अर्थव्यवस्था, औद्योगिक उत्पादन और तकनीकी उपलब्धियों के परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न आर्थिक संस्थाओं का निर्माण हुआ । औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के बढने से पूँजी की माँग को प्रोत्साहन मिला । अत: सर्वप्रथम वित्त संगठन अस्तित्व में आया । 1820 में फ्रांस में सोसाइटी कोमादी लैयर द लिदस्त्रीं" नामक संगठन स्थापित किया गया । 1836 में ''बैंक दि बैल्जीक" की स्थापना कम्पनियों के लिए प्रारम्भिक पूँजी जुटाने के उद्देश्य से की गई । 1830 से प्रारम्भ होने वाले दशक में निवेश के लिये उद्योगों से सम्बन्धित बचत बैंक स्थापित किए गए । 1845 में उद्योगपतियों को ऋण देने के उद्देश्य से प्रशा में एक संयुक्त पूँजी बैंक" स्थापित किया गया । फ्रांस में साख पोषित निवेश को जुटाने के लिए क्रेडिट मोबिलियर" और फ्रान्सियर' नामक वित्तीय संगठन स्थापित किए गए, परन्तु ये प्रारम्भिक संस्थाएँ इतनी सुदृढ़ एवं बडी नहीं थी कि वे उद्योगों के लिए पूँजी की बढ़ती हुई माँग को पूरा कर सकें । अत: इस संकट ने फ्रांस में उधार-पद्धति (क्रेडिट सिस्टम) को जन्म दिया । जर्मनी में 1850 के प्रारम्भिक दशक तक या तो सरकार स्वंय पूँजी की व्यवस्था करती थी अथवा भिन्न-भिन्न पूँजीपतियों ने अपनी ही प्रेरणा से कम्पनिया स्थापित कर लीं । 1864 से फ्रांस में जमा-बैंक स्थापित किए गए और 1872 में फ्रांस में सर्वप्रथम निवेश-बैंक का गठन किया गया जिसने औद्योगिक एवं व्यापारिक उद्यमों के लिए दीर्घकालीन दायित्व को स्वीकार किया । इसके पश्चात् अन्य यूरोपीय देशों में भी फ्रांसीसी वित्तीय संगठनों के अनुरूप संस्थाएँ स्थापित की गईं । जर्मनी तथा आस्ट्रिया में ऐसे संगठनों ने औद्योगिक अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया । इस प्रकार के वित्तीय संगठनों

ने यूरोप में उद्योगों को जन्म तो नहीं दिया, परन्तु उनके विकास में महत्वपूर्ण सहायता अवश्य दी ।

यूरोपीय देशों में केन्द्रीय बैंक संस्थाओं का विकास 19 वीं शताब्दी में हुआ । ये संस्थाएँ मुद्रा जारी करने तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था के उतारचढ़ावों के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए उत्तरदायी थीं । फ्रांस में 'बैंक द फ्रांस' ' ने व्यापारी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन जुटाया । जर्मन एकीकरण के बाद जो 'राइख बैंक स्थापित किया गया था उसने जर्मन मुद्रा के मूल्य को स्वर्ण के साथ जोड़कर वित्तीय स्थिरता को स्थापित किया । 1870 के बाद के दशक में पश्चिमी यूरोप के अधिकांश देशों ने स्वर्णमान को अपना लिया, उदाहरणार्थ- 1871 में हालैण्ड ने, 1873 में जर्मनी, डेन्मार्क तथा स्वीडन, 1875 में नार्वे, फ्रांस, इटली, यूनान, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, रूमानिया तथा फिनलैण्ड ने स्वर्णमान को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार सम्पूर्ण-यूरोप में वित्त और व्यापारिक संगठनों का विकास होने से औद्योगिक अर्थव्यवस्था का भी विकास हुआ ।

कृषि और उद्योग, व्यापारी और श्रेणी में सम्बन्ध

10.4 कृषि और उद्योग

18वीं सदी में यूरोप की 85 प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए कृषि-कार्य करती थी और शेष 15 प्रतिशत में से अधिकांश लोग कृषि-कार्य में लगे हुए लोगों से लगान अथवा भूमिकर वसूल करके अपनी जीविका चलाते थे । कृषि अब भी परम्परागत तरीकों से की जाती थी और मध्यकाल से अब तक इन परम्परागत तरीकों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । ' लेकिन इस सदी के ' उतरार्द्ध में कृषि के क्षेत्रों में सुधार करके उत्पादन बढाने के कुछ प्रयास अवश्य किए गए थे, परन्तु उसका कुछ ठोस प्रभाव देखने में नहीं आया । इसका कारण यह था कि यूरोपीय कृषकों में कोई एकरूपता नहीं थी, पूर्वी यूरोप में जहाँ अधिकांश खेतिहर मजदूर बंधुआ थे तो पश्चिमी यूरोप में वे स्वतन्त्र थे । पश्चिमी यूरोप में चरागाह अधिकाधिक संख्या में फसल उत्पादन के काम में लाए जाने लगे और ब्रिटेन में कृषि उत्पादन बढाने के तरीकों पर भी खोज हुई, परन्तु फिर भी खाद्यान्न का उत्पादन उतना नहीं बढ़ा जितना कि आवश्यक था । पश्चिमी यूरोप अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त खाद्यानउत्पन्न नहीं कर पाता था, इसलिए उसे कुछ मात्रा में खाद्यान्नों का आयात पूर्वी देशों से करना पड़ता था । पूर्वी यूरोप में भूमि तो बहुत थी लेकिन वहां लोग इतनी संख्या में नहीं थें कि वे सम्पूर्ण भूमि पर कृषि कार्य कर सकें । फिर भी पूर्वी यूरोप अपनी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न अवश्य पैदा कर लेता था और कृषि -उपज का कुछ भाग वह पश्चिमी यूरोप को भी निर्यात करता था ।

18वीं शताब्दी में यूरोपीय जनसंख्या में लगभग 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई । 85 प्रतिशत यूरोपीय जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी । उनकी समृद्धि कृषि-उत्पादन में वृद्धि अथवा रोजगार के वैकल्पिक अवसरों पर निर्भर थी । जिससे कि उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार हो सके । यूरोप में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ कृषि-उत्पादन में भी कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं

हुई जिससे जनसाधारण के जीवन-स्तर में सुधार हो सके । यूरोप में जनसंख्या का दबाव पश्चिमी यूरोप में जितना स्पष्ट था उतना पूर्वी यूरोप में नहीं । पूर्वी यूरोप में संचार एवं यातायात साधनों में अव्यवस्था थी । समय-समय पर अकाल भी पड़ते थे लेकिन फिर भी सामान्य वर्षों में इतना उत्पादन हो जाता था कि वह उनके उपयोग के बाद भी बचा रहता था । यह अतिरिक्त उत्पादन पश्चिमी यूरोप को निर्यात किया जाता था और इस प्रकार पश्चिमी यूरोप में अकाल की स्थिति उत्पन्न नहीं होती थी । पूर्वी यूरोप में कृषि दास व्यवस्था (Serf dom) प्रचलित थी और जहाँ कृषकों के पास भरण-पोषण के लिए पर्याप्त खाध सामग्री थी वहाँ बाजार में उपलब्ध अन्य वस्तुओं को खरीदने के लिए उनके पास क्रयशक्ति नहीं थी । पश्चिमी यूरोप में यद्यपि कृषि-उत्पादन में वृद्धि के तरीकों के बारे में काफी प्रयास हो रहे थे लेकिन इंग्लैण्ड को छोड़कर अन्य भागों में उसकी उपलब्धि नगण्य थी । फ्रांस में कृषि -उत्पादन बढाने की तकनीक का उपयोग किया गया था लेकिन वह केवल अंगूरों के उत्पादन में, क्योंकि उनसे शराब बनायी जाती थी । परिणाम यह हुआ कि आवश्यक अनाजों के कृषि-क्षेत्र में कमी हुई जिससे निर्धन लोगों की जीविका चलती थी । इसका प्रभाव यह पड़ा कि कृषि-उत्पादन एवं भूमि की कीमतें बढ़ गयीं।

औद्योगिक प्रगति के लिए- यूरोप को परम्परागत कृषि-पद्धतियों से मुक्त करना आवश्यक था क्योंकि ये परम्परागत पद्धतियाँ जनसंख्या की उदरपूर्ति करने में असमर्थ थीं । 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोपीय कृषि व्यवस्था में बार-बार उत्पन्न होने,वाले संकट और दुर्भिक्षों की प्रमुखता रही । इसके परिणामस्वरूप वाणिज्यकृत कृषि का विकास तथा जनसंख्या वृद्धि से कृषि के स्तर की उन्नति, नवीन फसलों की खोज, वैज्ञानिक ढंग से नवीन कृषि तकनीकों के अन्वेषण को प्रोत्साहन मिला । बाजार-कृषि व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप भी कृषि-पद्धतियों में परिवर्तन हुआ ताकि कृषि-उत्पादन को बढाया जा सके । 1830-70 के बीच में ये प्रवृतियाँ और भी अधिक बढ़ गयीं, जब प्रशा और आस्ट्रिया में जागीरदारी प्रथा समाप्त हुई, रूस में कृषि-दास स्वतन्त्र हुए । कृषि-क्रांति को सर्वप्रथम पश्चिम यूरोप में अनुभव किया गया और उसके बाद दक्षिण तथा पूर्वी यूरोप में । कृषि-व्यवस्था में यह परिवर्तन फ्रांस में 1750 से, जर्मनी और डेन्मार्क में 1790 से आस्ट्रिया, इटली और स्विटजरलैण्ड में 1820 से और रूस तथा स्पेन में 1860 से देखने को मिलता है ।

कृषि में इन परिवर्तनों से व्यापार और उद्योग को अत्यधिक लाभ हुआ । व्यापार को इसलिए कि कृषि के 'अधिक से अधिक उत्पादन बिक्री के लिए बाजार में आने लगे और उद्योग को इसलिए कि नवीन कृषि -व्यवस्था बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति में समर्थ थी । इसलिए उसने कृषि में निरन्तर वृद्धि को प्रोआहन दिया तो दूसरी तरफ कृषक-वर्ग का महत्व भी बढा । कृषि के क्षेत्र में इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दुर्भिक्ष समाप्त हो गए और बार-बार कृषि के क्षेत्र में आने वाले संकटों का हानिकारक प्रभाव भी समाप्त हो गया । कृषक भी समाज के अन्य वर्गों के साथ-साथ औद्योगिक उद्यमों में निवेशकर्त्ताओं के रूप में आगे आए ।

18वी शताब्दी में यूरोप में जो उद्योग विद्यमान थे कृषि के समान भी कार्य पद्धति और उद्योगपतियों का दृष्टिकोण परम्परागत था । उद्योगों का संगठन 'गिल्डों'' (Guilds) अर्थात् श्रेणियों में विभाजित था । उच्चवर्ग की बढ़ती हुई सम्पदा के कारण उपभोक्ता खर्च में पहले की अपेक्षा वृद्धि तथा ऐसा जनसमूह जो कृषि-कार्य न मिल पाने के कारण उद्योगों में रोजगार प्राप्त करने को उत्सुक, कुछ ऐसे कारण थे जो उद्योगों को बढ़ाने में सहायक थे । इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस तथा स्विटजरलैण्ड में भिन्न प्रकार के उद्योग स्थापित हुए, क्योंकि इन देशों में उद्योग 'गिल्ड'' के नियन्त्रण से मुक्त था । यही कारण है कि इन देशों में यान्त्रिकी ढांचेपर उद्योगों का विकास हुआ । इन देशों में अपने देश के बाजारों के लिए और पूर्वी यूरोप के लिए ऊनी -वस्त्रों का उत्पादन होता था, लेकिन 1760 के पश्चात् इंग्लैण्ड और फ्रांस में ऊनी-वस्त्र उत्पादन में गिरावट आयी क्योंकि इनको बनाने की तकनीक अन्य यूरोपीय देशों ने भी सीख ली । सभी यूरोपीय देशों में उद्योगों पर शासकों अथवा कुलीन वर्ग का नियन्त्रण था । इस शताब्दी में जिन उद्योगों का विकास हुआ उनमें लोहा,युद्ध सामग्री, जहाज बनाना तथा चर्म-उद्योग प्रमुख थे जो युद्धों के कारण ही अस्तित्व में आए थे । लेकिन यूरोप में फिर भी बेरोजगारी की समस्या काफी विक्ट रही और इन उद्योगों में मजदूरी काफी कम थी । इस काल में ग्रामीण उद्योगों को छोडकर सभी यूरोपीय शहर औद्योगिक नगर बन गए थे । सन् 1770 के पश्चात् ओद्योगिक विकास के कारण ब्रिटेन के नगर बढ़ने लगे या नवीन नगरों की स्थापना होने लगी । इसके प्रमुख-उदाहरण बर्मिघम, मैनचेस्टर, लीस्टर और नॉर्टिघम आदि नगर हैं ।

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति की प्रक्रिया में राज्य ने अप्रत्यक्ष रूप से मदद की, किन्तु उद्योगों की स्थापना में उसकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं थी । लेकिन यूरोपीय महाद्वीप के 'प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी शासकों ''(Enlightened despot) जैसे, प्रशा का फ्रेडरिक महान् (1740-86), आस्ट्रिया की मेरिया थेरेसा (1740-80) और रूस की कैथरीन महान् (1762-96) ने राज्य के अन्तर्गत कारखानों एवं उद्योगों की स्थापना की थी । 18वी शताब्दी में फ्रांस में भी अस्त्र-शस्त्र, धातुकर्म तथा विलासिता की वस्तुओं के निमार्ण से सम्बन्धित कुछ राज्य द्वारा संचालित उद्योग असफल रहे जबकि ब्रिटिश शासन ने अपने पूँजीपति वर्ग को जो अप्रत्यक्ष रूप से सहायता दी थी उससे उद्योगों की स्थापना में बडी सहायता मिली । फ्रांस में अधिकांश सहायता कर में छूट, कम ब्याज पर या बिना ब्याज के ऋण, बिक्री के एकाधिकार अथवा प्रौद्योगिकीय सलाह आदि के रूप में थी । 1789 तक फ्रांसीसी सरकार ने बिना ब्याज के लगभग 13 लाख लिव्रे (livers) का ऋण दिया और फिर 50 लाख लिव्रे आर्थिक सहायता के रूप में दिए । उसने ब्रिटिश निर्माताओं, जैसे वस्त्र-निर्माण में जॉन होलकर एवं लौह एवं तोप-निर्माण में विलक्सिन को अपने यहाँ पर नियोजित किया ताकि वे फ्रांसीसी उद्योगों को अपनी तकनीकी शिक्षा दे सकें । प्रशा में राज्य द्वारा संचालित लोहे के उद्योग स्थापित किए गए तथा कोयले की भट्टी का विकास करने के लिए ब्रिटेन से जॉन बेलडन (John Baildon) को आमन्त्रित किया गया । चार्ल्स गेस कायने (Charles Gascoyne)'' रॉयल आयरन फाउण्ड्री एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स'' में कार्य करने के लिए रूस गए ।

दूसरी तरफ इंग्लैण्ड ने अपने औपनिवेशिक युद्धों तथा जहाजरानी अधिनियमों द्वारा व्यापारिक वर्ग की सहायता की । इससे एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक तन्त्र तैयार हुआ जिसका केन्द्र इंग्लैण्ड था । जहाजरानी अधिनियमों से ब्रिटिश व्यापारियों का उपनिवेशों के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित हो गया । 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में इंग्लैण्ड तथा हालैण्ड ये दो देश ऐसे थे जो वाणिज्यिक एवं उद्योग-सम्बन्धी हितों के प्रति पूर्ण संवेदनशील थे जबकि अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की सरकारें अभिजातवर्गीय तथा जमींदारों के हितों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखती थी ।

फ्रांस में 1790 तक कुल 900 कताई मशीनें थीं । ला क्रूसो (Le Creusot) नामक स्थान पर एक फ्रांसीसी लोहा-निर्माता इगनेस द वेडल (Ignace de Wendel) ने 1785 में ब्रिटेन के विलियम विलकिसन की तकनीकी सलाह से कोयले से पिघलाए जाने वाले लोहे का उत्पादन प्रारम्भ किया जबकि किसी अन्य फ्रेंच पूँजीपति ने उसका अनुकरण नहीं किया । प्रशा में उद्योग 1796 तक कोयले द्वारा पिघजाए हुए लोहे का सफलतापूर्वक उत्पादन करने लगे थे । इस प्रकार यूरोप में उद्योग परम्परागत ही थे किन्तु इनमें आधुनिक औद्योगिक क्षेत्रों की छोटी-छोटी श्रेणियाँ दृष्टिगोचर होती है ।

परन्तु यूरोपीय महाद्वीप पर फ़्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन युद्धों का प्रभाव बहुत कुछ अंशों तक लाभ प्रद रहा । फ्रांस में नेशनल एसेम्बली का सुझाव पूँजीवाद को प्रोत्साहन देने तथा सामन्तीय व्यवस्था को समाप्त करने की तरफ था । 1790 में इसने फ्रांस में मुक्त व्यापार के क्षेत्र में आने वाली सभी बाधाओं -आन्तरिक सीमा शुल्क, चुँगी आदि को समाप्त कर दिया जिससे स्वदेशी बाजार (Home Market) विस्तृत हुए । 1791 में श्रेणियों को समाप्त कर दिया गया, ट्रेड युनियनों को अवैध घोषित कर दिया गया और व्यापार तथा व्यवसाय की स्वतन्त्रता दी गयी । उद्योग के वातावरण को और अधिक उन्नत बनाने के लिए मानक प्रणाली के रूप में मीट्रिक प्रणाली को प्रारम्भ किया गया दशमलव मुद्रा का प्रचलन किया गया तथा आविष्कारों के लिए संरक्षात्मक प्रणाली को प्रारम्भ किया गया । इन सुधारों को बेल्जियम, हांलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, इटली तथा जर्मनी मे भी लागू किया गया । नेपोलियन ने सड़क-तन्त्र के विकास द्वारा, अपनी विधि संहिताओं (Legal Codes) तथा अगिनत जर्मन राज्यों की संख्या में कमी करके उद्योगों को प्रोत्साहन दिया ।

19वी शताब्दी में अनेक परिवर्तनों ने यूरोपीय उद्योगों को नवीन स्वरूप में परिवर्तित किया जिससे औद्योगिकरण की गति भी तेज हुई । यह प्रवृत्ति वैसे तो सम्पूर्ण यूरोप में दृष्टिगोचर होती है परन्तु पश्चिमी यूरोप में जितनी प्रबल थी उतनी दक्षिणी और पूर्वी भागो में नहीं । इस समय यूरोपीय देशों ने अपने बाजार के लिए व्यापक उत्पादन प्रारम्भ किया । उन्होंने घरेलू तरीके छोड़ दिए तथा उद्योग स्थापित किए औद्योगिक प्रणाली के लिए नवीन आविष्कार. किए,कच्चे माल का आयात किया और अपने संसाधनों का विकास किया जिससे कि उनके द्वारा स्थापित उद्योगों का विस्तार हो सके । इस परिवर्तन के कारण खेतिहर समाज का पतन हुआ और ग्रामीण मजदूरों ने नगरों की तरफ प्रस्थान किया । इस समय जिन उद्योगों

का विकास एवं विस्तार हुआ उनमें सूती एवं ऊनी वस्त्रों उद्योग, कोयला एवं लोहे के उद्योग प्रमुख हैं ।

10.5 व्यापारी और व्यापारिक संघ

18 वीं शताब्दी की यूरोपीय अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी - विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का उदय होना तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में उन्नति । उनके परिणामस्वरूप विभिन्न यूरोपीय देशों की आर्थिक गतिविधियां अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ गयीं । इस व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों ने प्रमुख भूमिका निभयी । उसका सर्वाधिक लाभ भी यूरोपीय देशों को हुआ । अभी तक इंग्लैण्ड के व्यापारी भारत का माल चीन में तथा चीन का माल यूरोप में बेचते थे परन्तु अब यह विचारधारा बलवती होने लगी कि पर्याप्त श्रम उपलब्ध है, उसके उपयोग से कुटीर उद्योगों का उत्पादन बढ़ सकता है । इस समय इंग्लैण्ड ने 1763 में फ्रांस को पराजित कर उसके बहुत से उपनिवेश छीन लिए । 18 वीं शती में जहाजरानी के विकास, बैकिंग व्यवस्था तथा व्यापारी एजेण्टों के कारण यूरोप की आर्थिक राजधानी लन्दन हो गयी । फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् हॉलैण्ड के युद्धों में उलझ जाने के पश्चात् इंग्लैण्ड ने उसके सारे आर्थिक प्रबन्ध हड़प लिए।

फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व यूरोप में कठोर सामाजिक स्तरीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान थी । पूर्वी यूरोप के विशाल कृषक वर्ग की स्थिति दासों के समान थी और वहाँ पर छोटे से जमींदार वर्ग का प्रभुत्व था । पूर्वी यूरोप में किसी भी प्रकार के व्यापारिक अथवा औद्योगिक मध्यमवर्ग का अस्तित्व नहीं था और न ही आम उपभोग की वस्तुओं की कोई निश्चित माँग बन रही थी । ऐसी परिस्थिति में यूरोपीय महाद्वीप के औद्योगिक '! उत्पादन पर व्यापारिक संघों (Guilds) द्वारा नियन्त्रित कुशल कारीगरों एवं व्यापारियों का प्रभुत्व था । वे एक सीमित उच्चवर्गीय बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करते थे । 'दूसरी तरफ इंग्लैण्ड ने औपनिवेशिक युद्धों तथा जहाजराजी अधिनियमों द्वारा व्यापारिक एवं निर्माण-कार्य में लगे हुए वर्गों की सहायता की । औपनिवेशिक युद्धों में विजय से एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक तन्त्र स्थापित हो गया जिसका केन्द्र इंग्लैण्ड था । जहाजरानी । अधिनियमों के कारण नौ परिवहन तथा उपनिवेशों के व्यापार पर ब्रिटिश व्यापारियों का नियन्त्रण स्थापित हो गया था ।

फ्रांस में नेशनल एसेम्बली की स्पष्ट नीति पूँजीवाद को प्रोत्साहित करने की थी । 1790 में उसने फ्रांस में मुक्त व्यापार के क्षेत्र में आने वाली सभी बाधाओं को समाप्त कर दिया था और अपने गृह बाजार (Home Market) को विस्तृत किया । 1791 में उसने व्यापारिक संघों (Guilds) को समाप्त कर दिया था और यह घोषणा की कि 'प्रत्येक व्यक्ति व्यापार, व्यवसाय अथवा पेशा अपनाने के लिए स्वतन्त्र है ।' ' इस घोषणा से व्यापारी वर्ग को प्रोत्साहन मिला । लेकिन इस समय यूरोपीय पूँजीपति तथा व्यापारी नवीन प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने के स्थान पर पुरानी ब्रिटिश मशीनों का प्रयोग करना ही अधिक पसन्द करते थे । यूरोप के अन्य देशों के व्यापारियों ने अपनी-अपनी सरकारों के माध्यम से ब्रिटिश स्पर्धा का मुकाबला प्राय: संरक्षणात्मक सीमा-शुल्क आदि लगाकर किया । 1820 से यूरोपीय देशों ने

संरक्षण की नीति को अपनाया ताकि उनके अपने व्यापारी एवं उद्योगपति ब्रिटिश प्रतिस्पर्धाओं से पराजित न हो जाएँ ।

व्यापारिक संघो का स्वरूप

आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोपीय व्यापारी व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने ही परिवार की साझेदारी में व्यापार करते थे । अनेक समुद्रपारीय व्यापारों में अलग-अलग व्यापारी हैनसिएरिक लीग अथवा मर्चेण्ट एडवेन्चर्स जैसे बड़े संगठनों के निर्देशन में कार्य करते थे । इनमें भी ये व्यापारी मूलत: स्वंय ही काम करते थे, अपना सामान बेचते थे तथा पूँजी भी अपनी ही लगाते थे । जो व्यापारी स्वयं विदेश नहीं जा पाते थे, वे अपने दलालों के माध्यम से विदेशों के व्यापारियों से सम्पर्क करते थे । स्वाभाविक रूप से ऐसे व्यापार में जोखिम बहुत अधिक रहता था क्योंकि ये दलाल अपने व्यापारी का कभी-कभी अहित कर देते थे । इस समय व्यापारियों में साझेदारी की प्रथा का प्रचलन हुआ और समुद्रपारीय व्यापार में छोटे-छोटे व्यापारी अधिक संख्या में सम्मिलित होने लगे । इस प्रणाली में सामान्यता एक साझेदार जहाज ले जाता और सामान बेच आता था । अन्य साझेदार अपना माल तथा पूँजी देते थे और उसके लाभ अथवा हानि में सम्मिलित होते थे । यह व्यापार में साझेदारी सामान्य रूप से एक बार की यात्रा के लिए होती थी, लेकिन अधिक आर्थिक गतिविधियों में व्यापारियों की लम्बी साझेदारी का भी प्रचलन हुआ । इन साझेदारों में खुदरा व्यापारी, उद्योगपति तथा बैंक भी सम्मिलित थे । कुछ व्यापारियों के संगठन परिवार की विस्तृत साझेदारी के रूप में थे तो कुछ केन्द्रीकृत थे, जैसे संयुक्त पूँजी कम्पनी (Join stock company) । इन व्यापारिक कम्पनियों की आधारभूत शेयर पूँजी होती थी जिसे अन्य व्यापारी साझीदार के रूप में देते थे । बाद में उसमें अन्य लोगों को भी सम्मिलित किया जाने लगा ।

यह ऐसे व्यापारिक संगठन की आरम्भिक अवस्था थी । व्यापारिक कम्पनियाँ केवल एक यात्रा के लिए माल देती थीं और यात्रा पूरी होने पर लाभांश का भुगतान पूँजी और लाभ के रूप में होता था । "संयुक्त पूँजी कम्पनी" का सूत्रपात एक महत्वपूर्ण व्यापारिक घटना थी जिसके अन्तर्गत व्यापारियों को कुछ विशेष क्षेत्रों में व्यापार करने का एकाधिकार मिला । अकेले व्यापारी को जोखिम उठाने में कुछ हिचकिचाहट होती थी लेकिन संयुक्त पूँजी कम्पनी की स्थापना से इस समस्या का निराकरण भी हो गया ।

18वीं शताब्दी में व्यापार के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । इससे पहले अधिकाधिक व्यापार यूरोपीय देशों के बीच ही होता था, परन्तु अब यूरोपीय देशों के अन्य देशों के साथ व्यापार में वृद्धि हुई । एक अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था का उदय हुआ । दूसरा, हॉलैण्ड की प्रमुखता का अन्त हो गया तथा ब्रिटेन और फ्रांस परस्पर प्रतिद्वन्दी राष्ट्र के रूप में सामने आए । इन दोनों के मध्य चलने वाले संघर्ष में अन्तत: ब्रिटेन विजयी रहा । इस समय अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में व्यापारिक प्रश्नों को अत्यधिक महत्व देने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है । हॉलैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस तथा ब्रिटेन के लिए व्यापार का अत्यधिक महत्व था । व्यापार की वृद्धि के लिए नवीन उद्योगों तथा व्यापार केन्द्रों को प्रोत्साहन मिला जिससे उपयोग की नई-नई वस्तुओं का उपभोग बढ गया । यूरोप के विभिन्न देशों के बीच व्यापार मुख्यत:

यूरोप में उत्पादित वस्तुओं का किया जाता था, जैसे बाल्टिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले अनाज तथा टिम्बर, ब्रिटिश कपड़ा तथा धातु का सामान, फ्रांसीसी कपड़ा तथा शराब, स्पेन की ऊन तथा पुर्तगाली शराब । लेकिन धीरे-धीरे इस व्यापार में अन्य महाद्वीपों की वस्तुएं भी सम्मिलित हो गयी तथा लाभप्रद निर्यात व्यापार प्रारम्भ हुआ । इस काल में अन्तर्राज्यीय और अन्तर्महाद्वीपीय व्यापार में भी काफी वृद्धि हुई । अन्य बहुत से देशों जैसे स्कॉटलैण्ड, स्वीडन, हॉलैण्ड, हैमबर्ग, वेनिस, प्रशा. तथा आस्ट्रिया में भी व्यापारिक कम्पनियों का गठन किया गया, परन्तु ये अधिक सफल नहीं हो सकीं । इससे यह स्पष्ट हो गया था कि सरकार के समर्थन के बिना व्यापारियों के लिए सुदूर देशों के साथ व्यापार करना सम्भव नहीं था ।

10.6 सारांश

इस इकाई में आपने यूरोप में औद्योगिक अर्थव्यवस्था से अभिप्राय, औद्योगिक परिवर्तन तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था के प्रमुख तत्वों का अधयन किया और देखा कि विभिन्न यूरोपीय देशों में किस प्रकार औद्योगिक परिवर्तन हुए । यूरोप में औद्योगिक अर्थव्यवस्था को प्रेरित करने वाले तत्वों में जनसंख्या में वृद्धि, राष्ट्रवाद, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मैं वृद्धि, राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ वित्त और व्यापार संगठन आदि प्रवृतियों का विशिष्ट योगदान रहा है जिन्होंने यूरोपीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया । कृषि और उद्योगों के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अत्यधिक लाभ हुआ । इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका एवं व्यापारिक संघों के स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन हुए, जो कि इस समय की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता है ।

10.7 बोध प्रश्न

(1) औद्योगिक अर्थव्यवस्था से आप का क्या अभिप्राय है?

(2) औद्योगिक अर्थव्यवस्था के प्रेरकतत्वों का विवेचन कीजिए ।

(3) कृषि क्षेत्र में हुए विकास ने औद्योगिक प्रगति को किस प्रकार प्रभावित किया ।

(4) 18 वीं शती में व्यापारिक संघो के स्वरूपस का विवेचन कीजिए ।

10.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1- कैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑव यूरोप, वॉल्यूम 1, पार्ट 1, II

2- क्लाग, एस.बी.; यूरोपीयन इकोनोमिक हिस्ट्री

3- ओग, एफ.ए; इकोनोमिक डवलपमेण्ट ऑव मॉडन यूरोप

4- पार्थसारथी गुप्ता, यूरोप का इतिहास

5- मिलवर्ड़, ए. एण्ड साल, एस.बी. इकोनोमिक डवलपमेण्ट ऑव कॉण्टिनेण्टल यूरोप 1760- 1870

इकाई 11
उदारवाद और यूरोप में संवैधानिक विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 उदारवाद का अभिप्राय

11.3 उदारवाद की आधारभूत मान्यतायें

11.4 यूरोप में उदारवादी चेतना का विकास-बदलते सैद्धांतिक प्रतिमान

11.5 ब्रिटिश उदारवाद और संविधानवाद

11.6 यूरोप के अन्य देशों में उदारवाद और संवैधानिक विकास पर उसका प्रभाव

11.7 सारांश

11.8 बोघ प्रश्न

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे -

- 'उदारवाद का जन्म यूरोप में मूलत: सामान्तवाद के विध्टन की पृष्ठभूमि में हुआ ।
- उन कारकों के विषय में जिनसे उदारवाद के जन्म और विकास में सहायता मिली
- 'यूरोप के प्रमुख देशों के संवैधानिक विकास क्रम में किस प्रकार उदारवाद का क्रमिक विकास हुआ और इसकी प्रतिध्वनि उनके संवैधानिक इतिहास पर अमिट प्रभाव छोड़ती गई ।
- 'उदारवादी दर्शन ने आगे चलकर समूचे विश्व इतिहास पर क्या-क्या प्रभाव छोड़े तथा किस प्रकार विश्व इतिहास को प्रभावित किया ।
- 'एक विचारधारा व दर्शन के रूप में उदारवाद का विश्वइतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा जिसके कारण प्रजातांत्रिक व कत्याणकारी राज्यों का उदय और विकास हुआ ।

11.1 प्रस्तावना

यूरोपीय पूँजीवाद के विकास ने समूचे विश्व इतिहास पर गहरी छाप छोड़ी । इसने यूरोप की पारम्परिक सामन्तवादी व्यवस्था को ध्वस्त कर नये सामाजिक सम्बन्धों की शुरूआत की । भुस्वामियों का शक्तिशाली वर्ग धीरे धीरे अपनी सत्ता व प्रभाव को खोता चला गया तथा नवोदित पूँजीपति व मजदूर वर्ग समाज-व्यवस्था की नई वास्तविकता बन गये । यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इस समय पारम्परिक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाओं. का तेजी से औद्योगिकरण हुआ तथा विशाल पैमाने पर किये गये । औद्योगिक उत्पादन को खपाने के लक्ष्य से उपनिवेशवाद का जाल धीरे-धीरे एशिया अफ्रीका महाद्वीपों में फैलता चला गया ।

इंग्लैण्ड व अन्य औद्योगिकृत देशों की कच्चे - माल को खपाने की कोशिशों के कारण एक के बाद एक नये उपनिवेश बनते. चले गये ।

11.2 उदारवाद का अभिप्राय

उदारवाद में सामान्य तौर पर निम्नलिखित बातों को शामिल करते हैं- संविधानवाद, जनता का प्रभुत्व, विधि के समक्ष समानता, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजातंत्रवाद और वैयक्तिक स्वंतन्त्रता । अठारहवी शताब्दी के यूरोप में उदारवाद का वर्चस्व था जिसकी वैचारिक जड़ें फ्रांस की क्रांति में ढूँढी जा सकती हैं । मौटे तौर पर हम उदारवाद में दो विचार-सरिताओं को शामिल कर सकते है व्यक्तिवाद तथा प्रजातन्त्र । मैकगर्वन ने ठीक ही लिखा है कि एक राजनीतिक सिद्धान्त के रुप में उदारवाद दो पृथक तत्वों का मिश्रण है इसमें एक लोकतंत्र है और दूसरा है व्यक्तिवाद । इस प्रकार उदारवाद व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्रता को केन्द्रबिन्दु मानकर चलता है । उदारवाद यह मानता है कि मनुष्य ,को विवेक के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये तथा व्यक्ति को अत्याचारी शासन के विरूद्ध विद्रोह करने का 'अधिकार दिया जाना चाहिए । उदारवाद का अग्रह है कि समस्त राजनीतिक आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति को केन्द्र मानकर किया जाना चाहिए ।

11.3 उदारवाद की आधारभूत मान्यतायें

उदारवाद की आधारभूत मान्यताओं को निम्न प्रकार से सुत्रबद्ध किया जा सकता है :-

- मानवीय विवेक व बुद्धि में आस्था, विवेकवाद
- समाज व राज्य कृत्रिम संगठन हैं जिनका निर्माण मानव ने अपनी कुछ निश्चित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया है तथा आवश्यक होने पर उसमें संशोधन / परिवर्तन किया जा सकता है।
- व्यक्ति साध्य है और राज्य साधन है ।
- मानवीय स्वतन्त्रता के आदर्श में दृढ विश्वास तथा निरकुंशसत्ता का विरोध वर्गीय विशेषाधिकारों को विरोध ।
- व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन जिसमें प्रमुख रूप से जानेलाक की धारणा के अनुसार जीवन स्वतंत्रता व सम्पति के प्रकृतिक अधिकार शामिल
- धर्म-निरपेक्ष राज्य का सिद्धान्त (चर्च व राज्य का पृथक होना)
- जन सम्प्रभुता व लोकतन्त्र में विश्वास ।
- कानून के शासन का समर्थन व संविधानवाद में दृढ आस्था ।

प्रो. हाबहाअस ने अपने ग्रंथ उदारवाद में उदारवाद के अर्थ को 9 प्रकार की स्वतन्त्रताओं के सन्दर्भ में समझाया है जिनमें से प्रमुख हैं - नागरिक स्वतंत्रता, वित्तीय स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता प्रशासनिक भौगोलिक व जातीय स्वतंत्रता आदि । इस विविध स्वतंत्रताओं पर बारी बारी से विचार किया जाना यहां पर आवश्यक है । नागरिक स्वतंत्रता से अभिप्राय है कि व्यक्ति या व्यक्ति समूह कानून सम्मत व्यवहार करे तथा उन्हें मनमाने ढंग से व्यवहार करने की छूट समाज में नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि उदारवाद कानून -और स्वतंत्रता को परस्पर पूरक मानकर चलता है न कि एक दूसरे का

विरोधी । वित्तीय स्वतंत्रता का अभिप्राय उदारवादियों के उस नारे में अभिव्यक्त होता है :- बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं (No Taxation without Representation) स्पष्टत: इसकी मान्यता है कि जनता पर जन प्रतिनिधियों को इच्छा के विपरीत कर नहीं लगाये जाने चाहिये । व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी उदारवाद में विशेष महत्व है और इसके विविध पहलूओं पर जे.एस.मिल द्वारा विस्तार से चर्चा की गई किन्तु इसका सार यह है कि व्यक्ति को अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है और वह अपने उपर, शरीर पर, मास्तेक पर, सर्वोपरि सजा रखता है । सामाजिक स्वतंत्रता से उदारवादियों का अभिप्राय सामाजिक समता से है जिसमें वे वंश, जाति, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव व विशेष वर्गीय अधिकारों का प्रतिरोध करते हैं । आर्थिक स्वतंत्रता उदारवादियों और विशेषकर पारम्परिक उदारवादियों का सर्वाधिक - प्रिय क्षेत्र रहा है । और इस संबंध में उनका मानना यह रहा है कि राज्य या सरकार को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप न कर स्वतंत्रता प्रतियोगिता के अवसर सुलभ कराने चाहिये । पारिवारिक स्वतंत्रता के सन्दर्भ में उदारवाद स्त्रियों की स्वतंत्रता का विशेष समर्थन करता है और उसे पति. के समान स्थान दिये जाने का पक्षघर है । इसी प्रकार बच्चों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक विकास के लिये उदारवाद समुचित शिक्षा की व्यवस्था किये जाने पर भी बल देता है । प्रशासनिक भौगोलिक व जातीय स्वतंत्रता से उदारवादियों का यह आग्रह है कि व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी प्रशासन, क्षेत्र व जाति के अधीन रहने के लिये बाध्य न किया जाये । अर्न्तराष्ट्रीय स्वतंत्रता स्वत: ही इस प्रकार की स्वतंत्रता से पुष्ट होती क्योंकि इस प्रकार यह साम्राजयवाद व उपनिवेशवाद विरोधी स्वरूप, ग्रहण कर लेती है । उदारवाद राजनैतिक स्वतंत्रता के माध्यम से स्वेच्छाधारी शासन और निरंकुशता का विरोधी है, जनतंत्र का प्रबल पक्षधर है और यह मानता है कि सम्पूर्ण शासन सत्ता जनता में या जनप्रतिनिधियों में निहित होनी चाहिये और प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक जीवन व किया कलापों में सक्रिय होकर भाग लेना चाहिये ।

स्वतंत्रताओं के उपरोक्त विविध पक्षों की संक्षिप्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदारवाद में स्वतंत्रता, समानता लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और व्यक्तिवाद के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को सामाजिक सन्दर्भ में समन्वित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है ।

11.4 यूरोप में उदारवादी चेतना का विकास व बदलते सैद्धान्तिक प्रतिभान

उन्नीसवीं शताब्दी को उदारवाद का चरमोत्कर्ष काल माना जा सकता है किन्तु इसके पहले के 75 वर्षों में (1800 से 1875) तक उदारवाद औद्योगिक मध्यमवर्ग से सीधा जुड़ा हुआ था । इस अवधि में उदारवाद वहाँ अधिक शक्तिशाली रहा जहां औद्योगिक क्रांति का प्रसार हुआ- विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप के देशों में । उदारवाद के जन्म तथा विकास के पीछे साम्यवाद का पतन एक महत्वपूर्ण कारण था । 15 वीं सदी में इंग्लैड के गुलाबों के युद्ध से सामन्तवर्ग को बड़ी क्षति पहुँची और राष्ट्रीय राज्य के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ । इस समय किसानों में भीषण असन्तोष व्याप्त था जिसके कारण सांमती-शोषण के विरूद्ध यूरोप में अनेक किसान-विद्रोह हुये । 1381 ई. में फ्रांस में हुआ किसान विद्रोह जैकरी-विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध

हुआ । मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था के विकास के कारण इस समय सामन्तवाद के विरूद्ध नई लहर उत्पन्न हुई । यूरोपीय पूर्नजागरण व धर्म सुधार आन्दोलन ने भी सामान्तवाद के पतन व उदारवाद के जन्म और विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया । पुर्नजागरण की शुरूआत यद्यपि इटली से हुई किन्तु बाद में यह आन्दोलन समूचे यूरोप में फैल गया । कागज और मुद्रण कला के कारण पुर्नजागरण की विचारधारा साहित्य, संस्कृति, राजनीति, कला सभी क्षेत्रों में प्रभावशाली बनती चली गई । पुर्नजागरण काल में भी उदारवादी आन्दोलन की तरह मध्यमवर्ग की अग्रणी भूमिका थी क्योंकि इसका स्वरूप तर्क प्रधान, ईसाई विरोधी व सामन्तवाद विरोधी था । दांते को पुर्नजागरण का अग्रदूत कहा जाता है और उसने अपनी प्रसिद्ध कृति 'डिवाइन कामेडी'' में तत्कालीन समाज व्यवस्था की आलोचना कर विचार-स्वंतन्त्रता का पक्ष लिया ।

सोलहवीं शताब्दी में हुए यूरोप के धर्मसुधार आन्दोलन ने भी उदारवादी चेतना के प्रसार में योगदान दिया । लगातार हुऐ धर्मसुधारों से अन्ततः धर्मनिरपेक्षतावाद को बढ़ावा मिला तथा चर्च की निरंकुशता पर उत्तरोत्तर सीमायें लगाई गई । धर्म सुधारों ने लम्बे दृष्टिकोण से देखने पर संवैधानिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका -निभाई । जब 1642 में राजा की निरंकुशता का भी उदारवादी प्रेरणाओं से युक्त होकर विरोध किया गया और 1649 में स्वेच्छाचारी राजा चार्ल्स प्रथम को फ्रांस पर लटका दिया । इस समय तक शक्ति प्रतिस्पर्द्धा राजा व संसद के बीच चल रही थी जिसमें संसद के द्वारा निर्णायक विजय प्राप्त की गई । इग्लैण्ड में टयूडर काल (1485 से 1603 तक) के दौरान ।निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला रहा किन्तु राजा और संसद का संघर्ष इस समय आरम्भ हो चुका था । 1688 की रक्तहीन क्रांति के बाद ही यह प्रतिस्पर्धा समाप्त हुई जान पड़ी जब जैम्स द्वितिय अपने परिवार के साथ भाग खडा हुआ और यह स्पष्ट हो गया कि राजा संसद की मर्जी बिना या विरूद्ध शासन नहीं कर सकता । राजत्वे के दैवीय स्वरूप की यह समाप्ति थी और 1689 के ऐतिहासिक बिल आफ राईटत् द्वारा संसद द्वारा इसे स्वीकृति प्रदान कर दी गई । इस बिल द्वारा संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो ' गई तथा राजा की निरंकुशता सदा के लिए समाप्त हो गई । उदारवादी चेतना के अनुरूप ब्रिटेन में मंत्रीमण्डल प्रथा का विकास हुआ और यह मंत्रीमण्डल संसद के. प्रति उत्तरदायी था । इंग्लैण्ड में धीरे-धीरे ही मताधिकार का विस्तार हुआ तथा 1832, 1867,1884, व 1918 के अधिनियमों द्वारा क्रमशः मध्यम वर्ग, मजदूर वर्ग, खेतिहर मजदूर व महिलाओं को मत देने का अधिकार दिया गया ।

उदारवाद के विकास में विज्ञान व विवेकवाद का कारक भी विशेष महत्व का था । सत्रहवी शताब्दी में गैलिलियों, न्यूटन, कोपरनिकस, कैपलर आदि की अनेक वैज्ञानिक खोजों के द्वारा यह माना जाने लगा कि भौतिक विश्व अपरिवर्तनीय नियमों द्वारा संचालित है और मनुष्य इन नियमों की व्याख्या करने में सक्ष्म है । अतः मनुष्य अपने विवेक से समस्त समस्याओं को सुलझा सकता है । इस समय के दार्शनिकों जिनमें बेकन, रेन, देकार्ते, लॉक, वाल्तेयर, रूसों प्रमुख हैं, ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण, संदेहवाद, अनुभववाद व व्यवहारवाद का प्रबल समर्थन किया । लॉक ने मनुष्य के प्रकृतिक अधिकारों, जीवन स्वतंत्रता और सम्पति के अधिकारों का जोरदार पक्ष लिया तथा सीमित व संवैधानिक सरकार के आदर्श को प्रतिष्ठित

किया । उसके अनुसार कोई भी सरकार व्यक्ति के जीवन सम्पति और स्वतंत्रता के अधिकारों का उल्लधनं नहीं कर सकती और अगर वह ऐसा करती है तो लोग उसे उखाड़ फेंक सकते हैं । फ्रांसीसी विचारक मट्स्क्यू ने भी सीमित सरकार के आदर्श का समर्थन किया तथा शक्ति के पृथक्करण तथा नियंत्रण व संतुलन के सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक व्याख्या की । रूसों ने स्पष्टत: यह उद्घोषित किया कि सम्प्रभुता जनता में निहित है तथा कानून राजा का आदेश न ' होकर सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है ।

इस प्रकार सामान्तवाद का विघटन, औद्योगिक क्रांति, धर्मसुधार आन्दोलन, मध्यकालीन पुर्नजागरण व विवेकवाद तथा लाक, रूसो, माझटेस्क्यू बाल्तेयर आदि दार्शनिकों की विचारधारा के समन्वित प्रभाव से मिलकर यूरोप में उदारवादी चेतना का फैलाव हुआ । उदारवादी चेतना की व्यापक अभिव्यक्ति तो बाद के वर्षों में जाकर देखी गई किन्तु 17वीं शताब्दी में ही वे आधारभूत लक्षण और विचार अस्तित्व में आ गये थे जिनसे आगे चलकर उदारवादी दर्शन को बल मिला, उदारवादी राजनीतिक संस्थायें निर्मित की गई और संवैधानिक विकास क्रम को उदारवाद ने निर्णायक रूप से प्रभावित किया ।

उदारवाद के बदलते सैद्धान्तिक प्रतितभान

जैसा कि हमने पूर्व में देखा है एक सिद्धान्त व दर्शन के रूप में उदारवाद का उदय यूरोप के मध्यकालीन पुर्नजागरण, ज्ञानोदय, इग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति व फ्रांस की प्रसिद्ध क्रांति के फलस्वरूप हुआ और इसी क्रम में अमेरिकी मानव अधिकारों की घोषणा को समझा जाना चाहिये । इस समूचे ऐतिहासिक घटनाक्रम से एक-एक कर उदारवाद का प्रभाव यूरोप व विश्व के अन्य भागों में 19वीं शताब्दी में महसूस किया जाने लगा ।

ज्ञानोदय पुर्नजागरण और विवेकवाद ने यह मत प्रतिवादित किया कि कोई भी नैतिक उद्देश्य ऐसे नहीं हो सकते जिन्हें कि पूर्ण रूप से सही समझा जाये और राज्य के सभी नागरिकों पर एक जैसी जीवन शैली आरोपित कर दी जाये ।इसका अभिप्राय था कि सत्य के विविध पहलू-सापेक्ष स्वरूप में होते हैं और कोई भी इस सम्बन्ध में अन्तिमता का दावा नहीं कर सकता । कदाचित यह मान्यता आगे चलकर धार्मिक सहिष्णुता-सहनशीलता और धर्म निरपेक्षता के प्रति उदारवादी आग्रह में प्रतिफलित हुई । इस प्रकार धार्मिक स्वतंत्रता व सहिष्णुता सदैव के लिये उदारवादी दर्शन का अभिन्न अंग बन गई । जे.एस.मिल की पुस्तक ' आन लिबर्टी ' ने इस सैद्धान्तिक पक्ष को तार्किक परिणाम तक आगे बढाया । स्वतंत्रता को किसी भी प्रकार से प्रतिबन्धित करना राज्य के लिये वांछनीय नहीं है । व्यक्ति के विचार सत्य, अर्द्धसत्य और पुर्णत: असत्य हो सकते है । किन्तु तीनों ही स्थितियों में इन विचारों का प्रकटीकरण समाज के व्यापक हित में जाता है । क्योंकि विचार सत्य हो या अर्द्धसत्य हो तो उनकी वांछनीयता स्पष्ट है तथा पूर्णत: असत्य होने की स्थिति में भी वे सत्य को समझने में सहायता प्रदान करते है । जे.एस. मिल ने इसी प्रकार कार्य की स्वतंत्रता का समर्थन किया और स्वविषयक कार्यो में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दिये जाने का समर्थन किया । उसकी मान्यता के अनुसार व्यक्ति के केवल उन्हीं कार्यों पर न्यायोचित प्रतिबन्ध राजसत्ता द्वारा लगाये जा सकते थे जो कि दूसरों से सम्बधिंत हो या दूसरों पर उन कार्यों का प्रभाव पड़ता है । जे. एस. मिल के इन क्रांतिकारी

विचारों के कारण जहां उसे स्वतंत्रता का अग्रदूत कहकर पुकारा गया वही इन्हीं विचारों ने ब्रिटिश उदारवादी परम्परा की नींव मजबूत की ।

इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति ने इस मान्यता को जन्मदिया कि किसी भी प्रकार के शासन में दैवीय अधिकारों का औचित्य नहीं हो सकता तथा आगे चलकर एक नये विचारक्रम की शुरूआत हुई जिसे सामाजिक समझौता सिद्धान्त की संज्ञा दी गई । इसके महान सिद्धान्तकार थे हाब्स, लॉक और रूसों और समवेत रूप से इनके चिन्तन के पीछे उदारवादी व व्यक्तिववादी प्रेरणायें कार्य कर रही थी । फ्रांस की क्रांति मैं भी इन, प्रेरणाओं की गूँज सुनी जा सकती है जिससे यह सुस्थापित कर दिया गया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत पावन है और राजकीय सत्ता दैवीय समर्थन के बहाने या अन्य किसी बहाने से इसकी अवहेलना नहीं कर सकती । वस्तुतः इंग्लैण्ड का उदारवाद राजसत्ता के दैवीय स्वरूप के विरूद्ध उत्पन्न हुआ और नवोदित पूँजीपति वर्ग में सूजा की शक्ति के विरूद्ध चेतना उत्पन्न हुई जबकि इंग्लैण्ड का राजा अपने दैवीय अधिकारों की दुहाई देकर निरंकुशता का समर्थन हासिल करता था । 16 वीं शताब्दी में शुरू हुये पश्चिमी यूरोप के धार्मिक सुधार आन्दोलन ने राजा की दैवीय सत्ता को तो अस्वीकार कर ही दिया अपितु इसने धार्मिक व अध्यात्मिक स्वतंत्रता की वकालत करते हुऐ धार्मिक मामलों में चर्च व पोप की निरंकुशता को सशक्त चुनौती प्रदान की । मार्टिन लूथर ने पोप की निरकुशता के विरूद्ध आवाज उठाई और एक प्रबल आन्दोलन उठ खडा हुआ । लूथर ने माना कि धार्मिक मामलों में व्यक्ति के उपर शक्ति का प्रयोग व प्रत्यारोपण अन्याय है और व्यक्ति स्वयं अपनी भक्ति व आराधना से ईश्वर की श्रद्धा प्राप्त कर सकता है ।

उदारवादी प्रेरणाओं के पीछें मध्य युगीन सामतवादी विरासत की भी सक्रिय भूमिका रही । निश्चित रूप से उदारवाद का उदय और विकास पूँजीपति वर्ग के उदय के साथ एक ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में जुड गया । आर्थिक परिवर्तनों से नई विचारधाराओं के उदय का मार्ग प्रशस्त होता है और उदारवाद के इतिहास पर दृष्टि डालते समय यह मान्यता और अधिक सत्य जान पड़ती है । मध्ययुग का सामाजिक व आर्थिक जीवन किसी भी दृष्टिकोण से स्वतंत्र नहीं माना जा सकता । श्रमिक और व्यवसायी श्रेणियाँ (गिल्ड) के नियंत्रण में थे वहां कृषक वर्ग सामन्तो के अधीन था । चर्च का हस्तक्षेप तो था ही । इंग्लैण्ड में राजा और सामन्तों के विरूद्ध व्यापक जन चेतना विद्यमान थी और आर्थिक 'रूप से सम्पन्न वर्ग में यह चेतना और अधिक व्यापक होती गई जबकि राजा ने संसद की सहमति के बिना नये कर अरोपित करने चाहे । इसी प्रकार फ्रांसीसी उदारवाद भी राजतंत्र की निरंकुशता के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ जबकि फ्रांसीसी मध्यम वर्ग ने जिसमें कि प्रभुल रूप से व्यापारी, दुकानदार, बैंकर बौद्धिकवर्ग व व्यवसायी शामिल थे ने स्वतंत्रता, समानता भ्रातृत्व की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया । वास्तव में ये मध्यमवर्गीय लोग अहस्तक्षेप के सिद्धान्त के आधार पर मुक्त व्यापार चाहते थे और व्यापार व पूँजीनिवेश के क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण के क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण का अन्त चाहते थे ।

नकारात्मक उदारवाद

माण्टेस्क्यू (पुस्तक-स्पिरिट आफ लाज,) बेंथम (फ्रेगमेणटस् आन गर्वनमण्ट) एडम स्मिथ (वेल्थ आफ नेशन्स) को प्रारंभिक नकारात्मक उदारवाद का सिद्धान्तकार माना जा सकता

है जिनकी समवेत रूप से यह मान्यता रही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामलों का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है और मानव की विवेकशीलता पर विश्वास किया जाना चाहिये । नकारात्मक उदारवाद ने स्वतंत्रता प्रतियोगिता का समर्थन किया क्योंकि मांग और पूर्ति का नियम व अन्य बाजार व्यवस्था की प्रक्रियायें अपने स्वयं के नियमों से स्वशासित व संचालित होती है और उनमें. किसी प्रकार का हस्तक्षेप राज्य द्वारा वाछनीय नहीं है । प्रारंभिक दौर के इन नकारात्मक उदारवादियों की स्वाभाविक तौर पर यह मांग थी कि राज्य द्वारा कम से कम कार्य किये जाने चाहिये तथा सरकार मूलत: एक आवश्यक बुराई है जिसका कार्य है परस्पर विरोधी हितों को समन्वित करना । बेथम ने इसी लिये यह माना कि सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम कार्य करें । स्पेन्सर ने जीवशास्त्रीय आधार पर इन्हीं तर्कों को आगे बढ़ाते हुये यह दलील दी कि राज्य को कल्याण व सुरक्षा के क्षेत्र में क्रियाशील नहीं होना चाहिये बल्कि राज्य का मुख्य कार्य कानून व व्यवस्था बनाये रखना है । इसी तरह का समान आग्रह हाब्स के चिंतन में प्रतीत होता है जब वह राज्य के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है । जानलॉक के अनुसार यदि सरकार व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा न करें तो उसके अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है । फ्रांस की क्रांति तथा अमेरिका क्रांति में इस नकारात्मक उदारवाद की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है । इन दो महान क्रांतियों में यद्यपि सतही तौर पर देखने से यह मालुम पड़ता है कि स्वतंत्रता व समानता के प्रेरणायें प्रमुख थी किन्तु वस्तुत: समानता और विशेषकर राजनीतिक समानता व स्वतंत्रता की आवाज ही मुख्य थी क्योंकि इस दौर के अनेक उदारवादी तो यह भी मानते थे कि आर्थिक असमानता अपरिहार्य व एक सकारात्मक अच्छाई है जो वस्तुत: उन्मुक्त व्यापार व बाजार शक्तियों के स्वतंत्र विकास के लिये आवश्यक है ।

सकारात्मक उदारवाद:

सकारात्मक उदारवाद ने उदारवाद के पारम्परिक स्वरूप में अनेक संशोधन परिवर्तन प्रस्तुत किये जो उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिकाधिक होते गये । जे.एस.मिल और थामस हिल ग्रीन को इस युग का प्रतिनिधि विचार माना जाता है । सकारात्मक उदारवाद के उदय में औद्योगिक क्रांति की परवर्ती घटनाओं का काफी प्रभाव रहा । इस समय आर्थिक विषमतायें बढ़ रही थीं, समाज आर्थिक संकट व मंदी के दौर से गुजर रहा था तथा श्रमिकों के विद्रोह का संकट निरन्तर बढ़ता जा रहा था । इस दौर के उदारवादी यह महसूस करने लगे थे कि बदले हालातों में राज्य का समाज के आर्थिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप आवश्यक हो गया है और राज्य से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह सफाई, स्वास्थ्य, जनकल्याण आदि क्षेत्रों में प्रभावी भूमिका निभायें । ग्रीन ने राज्य से ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करने की अपेक्षा की जिसमें सभी का समान विकास संभव हो सके । अवसर की समानता राज्य द्वारा सामाजिक संपति का पुर्नवितरण पूर्ण रोजगार की उपलब्धता आदि अनेक आदर्श जनकल्याण-कारी उदारवाद की आधार शीला बने । 1930 में अमेरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा घोषित 'न्यूडील कार्यक्रम' ' उक्त परिवर्तन की सशक्त अभिव्यक्ति थी । इसी प्रकार 1942 में ब्रिटिश अर्थशास्त्री विलियम बेबरिज द्वारा लिखित रिर्पोट भी ब्रिटेन में लोककल्याण कारी राज्य का आधार बनी । संशोधित व सकारात्मक उदारवाद के बीच लोककल्याण कारी राज्य का विचार अधिकाधिक ग्राह्य बनता

चला गया तथा राज्य ने शिक्षा, कार्य, मजदूरी व अन्य क्षेत्रों में एकाधिकारी प्रवृतियों पर अंकुश लगाने का कार्य हाथ में लिया । कीन्स के आर्थिक चिंतन ने भी इन्ही विचारों को पुष्ट किया ।

उदारवाद का सामयिक स्वरूप भी अनेक विरोधाभासों व असंगतियाँ से युक्त है । उदारवादी दर्शन में एक मूलभूत तनाव समतावादी अकाक्षाओं व विषमताकारी वैचारिक प्रवृतियों के बीच विद्यमान है । जहॉ एक और यह लोक कल्याणकारी राज्य की वकालत करता है वहीं दूसरी ओर इसकी समाज की बाजार सम्बन्धी अवधारणा व संपत्ति का अधिकार असमानतायें उत्पन्न करते हैं । वर्तमान में आनुभाविक उदारवादियों की एक नई पीढी भी है जो अपने दर्शन में विद्यमान व क्रियाशील व्यवस्था को ही सही मानते हुये इसका पक्ष पोषित कर रही है ।

11.5 ब्रिटिश उदारवाद और संविधानवाद

उदारवादी दर्शन ब्रिटेन में 16 वी शताब्दी से क्रमिक रूप से विकसित हुआ जबकि संवैधानिक सुधारो का सिलसिला उदारवादी प्रेरणाओं से युक्त होकर प्रारम्भ हो चुका था । ब्रिटिश उदारवाद के प्रारंभिक दौर में इसका नकरात्मक स्वरूप हाबी रहा जबकि राज्य सत्ता, और अधिक निश्चित शब्दों में राजा की शक्तियों पर अंकुश लगाने के प्रयत्न नवोदित पूंजीपति वर्ग व मध्यम वर्ग के नेतृत्व में प्रारम्भ हुये । उपरी तौर पर यह संघर्ष राजा और प्रजा के बीच प्रतीत होता है परन्तु इसी संघर्ष में ही ब्रिटिश संविधानवाद का आधार विकसित हुआ । ब्रिटिश संवैधानिक संस्थाओं का अनुक्रम एक के बाद एक उदारवाद के अनुकूल होता चला गया और इसकी स्वाभाविक परिणति संसदात्मक प्रणाली की उस संवैधानिक व्यवस्था में हुई जिसे हम अब ब्रिटेन में पाते है । कानून का शासन, संसदीय सहमति का सिद्धांत, राजा की निरंकुशता पर बढते प्रतिबन्ध, व्यक्तिगत अधिकारों को मिलती जन स्वीकृति धर्मनिरपेक्षता, प्रेस व भाषण की स्वतंत्रता 'आदि अनेक आयाम ब्रिटिश संविधानवाद में एक के बाद जुडते चले गये । इस महान ऐतिहासिक रूपांतरण में ब्रिटिश प्रवृति लगातार सुधार करने की और विवेकवादी बनी रही तथा इससे राजतंत्र को जनतंत्र के साथ राजसत्ता को लोकसत्ता के साथ समायोजित करने का सफल प्रयास किया गया ।

ब्रिटिश संविधानवाद :- ब्रिटिश संविधानवाद पर विचार करने से पूर्व संविधान व संविधानवाद का अर्थ जानना आवश्यक हो जाता है । सरकार या शासन की किसी भी व्यवस्था की आधारशीला उसका संविधान होता है जिसे आधारभूत कानून (Fundamental Law) माना जाता है । वे आधारभूत सिद्धान्त जो राज्य का स्वरूप तय करते हैं, राज्य के अधिकारों व नागरिकों के अधिकारों में सामंजस्य बिठाते हैं, शासन के अंगों के परस्पर सम्बन्धों का व शासक और शासितों के सम्बन्धों का नियमन करते है संविधान कहलाते है ।

संविधानवाद उन विचारों और सिद्धान्तों की और संकेत करता है जो संविधान का समर्थन करते हैं और राजनीतिक शक्ति पर प्रभावकारी नियंत्रण रखते हैं । प्राय: संविधान व संविधानवाद को समानार्थक समझा जाता है किन्तु संविधानवाद में संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों का समुच्चय मुख्यत: शामिल होता है । संविधानवाद संविधान में निहित मूल्यों, विश्वासों, आर्दशों का प्रतीक है जबकि संविधान इस संविधानवाद की व्यवहारिक परिणति या अभिव्यक्ति होता है । स्पष्टत: संविधानवाद संविधान की तुलना में व्यापक अवधारणा हैं ।

वस्तुत: संविधान के सैद्धांतिक आधार को संविधानवाद माना जा सकता है जिसमें मुख्यत: शक्ति विभाजन, निरंकुशता विरोध, लोकतंत्र विधि का शासन आदि मान्यतायें शामिल होती हैं ।

ब्रिटिश संविधानवाद के विकास में उदारवादी चेतना का महत्वपूर्ण योगदान रहा, । ब्रिटिश संविधान व संविधानवाद विशेषकर क्रमिक ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल है जो कि उत्तरोतर उदारवादी चेतना के व्यापक प्रसार के साथ स्पष्ट होता चला गया है । संसद की सर्वोच्चता, स्थानीय स्वायतशासन, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, प्रतिनिधि शासन प्रणाली, संसद की सर्वोच्चता ब्रिटिश संविधानवाद के उल्लेखनीय महत्वपूर्ण पहलू हैं और उनके वर्तमान विद्यमान स्वरूप के पीछे निश्चित तौर पर उदारवादी प्रेरणाओं और चेतनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । ब्रिटिश राज्य प्रणाली कुलीनतंत्र से प्रजातंत्र में किस प्रकार बदली इस महान ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये हमें उदारवादी सैद्धातिक धरातलों का सहारा लेना पडेगा । ब्रिटेन का इतिहास केल्ट जाति से शुरू होता है जबकि उसने ईशा से 600ई पूर्व इस पर अपना अधिपत्य जमा लिया था । तत्पश्चात ब्रिटेन 5 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक रोमन साम्राज्य के नियंत्रण में रहा । 5 वी. शताब्दी से सन् 1066 तक एंग्लो सैक्सन जाति का प्रभुत्व रहा । और इसी वर्ष नार्मन देश के विलियम आफ नोरमण्डी ने आक्रमण कर ब्रिटेन में नार्मन राज्य की स्थापना की । विलियम के शासक काल में सामन्तवादी शासन की स्थापना की गई । सामन्तवादी ईकाइयों को एक बैरन के नियंत्रण में रखा गया जो अपने यहाँ सेना रखता था और आवश्यकता पडने पर राजा की सहायता करता था । एंग्लो-सैक्सन काल में राजा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए 'ब्रिटेनोजोमेट' नामक संस्था का अस्तित्व था जो कि बुद्धिजीवियों की एक परामर्शदात्री समिति थी । विलियम ने इस संस्था को समाप्त कर "मैग्नम कांसीलियम' ' ("महान परिषद") की रचना की जिसका कार्य राजकीय राजस्व एकत्रित करना था । इस महान परिषद की शक्तिया "ब्रिटेनो जोमेट' ' की तुलना में कम होती गई और इसके स्थान पर एक अंतरिम समिति "क्यूरिया रोजिस' ' अस्तिव में आई । 18 वीं शताब्दी में आगे जाकर इस अन्तरिम समिति से ही मंत्री परिषद, प्रिवी कॉसिल व केबिनेट आदि महत्वपूर्ण संस्थाओं का विकास संभव हुआ । मेग्नम कॉसिलियम से 'हाउस आफ लार्डस' का विकास हुआ ।

राजा जान के समय में 1199 से 1216 तक ब्रिटेन में निरकुशं राजतंत्र अपने सर्वोच्च शिखर पर था । राजा के अत्याचार बढ़ गये थे तथा बैरन भी उसके विरूद्ध विद्रोह की धमकी दे रहे थे । अन्तत: राजा को उभरते जन असंतोष के सामने झुकना पड़ा और 1215 के ऐतिहासिक महत्व के माँगपत्र भैग्नाकार्टा' को स्वीकार करना पड़ा जो ब्रिटिश संविधानवाद के विकास में इसकी उदारवादी सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं के कारण अद्वितिय महत्व रखता है । इसकी मुख्य मांगे इस प्रकार थी ।

1. 'मैग्नम कांसीलियम' की सम्मति पर ही राजा करारोपण करें ।
2. किसी व्यक्ति को उस समय तक बन्दी न बनाया जावे व निर्वासित न किया जावे तब तक कि उसका अपराध सिद्ध न हो ।

3. अपराध की मात्रा व अपराधी की स्थिति के अनुरूप ही दण्ड दिया जावे । दण्ड नितान्त स्वेच्छाचारी न हो ।
4. 'कोर्ट आप कामन प्ली' निश्चित स्थान पर काम करें ।
5. राजा चर्च के संगठन, उसके अधिकारियों की नियुक्ति में, हस्तक्षेप न करें ।
6. विदेशी व्यापारियों के स्वतंत्र विचरण पर केवल युद्ध काल में ही प्रतिबन्ध लगाये जावे साधारण काल में नहीं ।

1215 के इस ऐतिहासिक मैग्नाकार्टा की स्वीकृत मांगों पर यदि हम गौर करें तो यह स्पष्ट होगा कि इन सब मांगों के पीछे उदारवादी चेतना महत्वपूर्ण रही थी । संसद की सहमति के बिना कर नहीं लगाये जाये यह मांग मूलत: इस सिद्धान्त 'का समर्थन करती है कि जन सहमति संविधानवाद व संविधान का अप्रधर है और इसके बिना किसी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती । यह स्वेच्छाचारिता व निरंकुशता का विरोध भी है क्योंकि इसमें जब तक अपराध सिद्ध न हो तब तक दण्ड नहीं दिये जाते और अपराध के अनुरूप ही दण्ड दिये जाने की मांग भी की गई थी ।

मैग्नाकार्टा ने पहली बार यह स्पष्टत: प्रतिपादित किया कि राजा को कुछ मूलभूत विधियों के अधीन रहना चाहिये और यदि वह उनका उल्लधन करें तो जनता राजा को उन विधियों को मानने के लिये बाध्य कर सकती है । इसके द्वारा देश में निरंकुशवाद की धारा पर रोक लगाई गई और उसे जनतंत्रात्मक दिशा प्रदान की गई । वस्तुत: मैग्नाकार्टा में ही ब्रिटिश संसद के बीजा रोपण का संकेत मिल गया था । 1295 में एडवर्ड प्रथम ने एक संसद बुलाई जिसका नाम आदर्श संसद (Model Parliament) रखा गया । वस्तुत: हैनरी तृतीय के समय की मैग्नम कांसीलियम से आगे बढ़कर ही यह विकास संभव हुआ था । आर्दश संसद में तीन समूह थे : - (1) उच्च वर्गीय लोगों का समूह नोबल्स (2) पादरी वर्ग (3) समान्य जन । प्रथम दोनों समूह धीरे-धीरे लार्ड सभा के रूप में विकसित हुये और द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के निम्न सदन के रूप में कामन सभा का विकास हुआ । 1340-41 में राजा और संसद फिर आमने-सामने हुये और एडवर्ड तृतीय को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह संसद को स्वीकृति के बिना कोई नये कर नहीं लगायेगा, संसद एक आयोग बनाकर हिसाब किताब का निरीक्षण करेगी तथा राजा के मंत्रीयों की नियुक्ति संसद द्वारा की जायेगी ।

1399-1485 तक लकांस्ट्रीयन वंश का शासन ब्रिटेन में चला जिसमें संसदीय शक्तियों का उत्तरोतर विकास होता गया । इसी युग में प्रसिद्ध गुलाबों का युग (Ware of rose) आरम्भ हुआ जिसमें संसदीय नियंत्रण से स्वतंत्र राजा व राज्य की मांग. की गई । 1485 तक आते-आते ट्यूड्र राजाओं की निरंकुश सजा स्थापित हो गई । इस युग में निरंकुशता वादी शक्तियों की अस्थाई तौर पर बढ़ोत्तीरी हुई । यद्यपि संसद का नियंत्रण राजाओं पर स्थापित नहीं हो सका फिर भी इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि की गई तथा प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया । ट्यूड्र काल में (1485 से 1603) राजकीय शक्ति पोप के नियंत्रण से मुक्त हो गई तथा राजा और संसद के बीच सहयोग पूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत हुई ।

संसदीय लोतंत्र की स्थापना व उदारवाद के विकास की दृष्टि से 1603 से 1714 तक का स्टूअर्ट राजाओं का शासन विशेष रूप से उल्लेखनीय है । 1688 में ऐतिहासिक गौरवपूर्ण क्रांति हुई जिसके द्वारा संसद की प्रभुसत्ता स्थापित हुई । राजा को कानून के नियंत्रण में कर दिया गया और निरंकुशतावादी शक्तियों की पुर्नस्थापन की सभी संभावनायें लगभग समाप्त हो गई । 1628 में संसद ने चार्ल्स प्रथम से विख्यात "अधिकर याचना पत्र" पर हस्ताक्षर करवाये जिसकी कुछ महत्वपूर्ण मांगें निम्न प्रकार से थी.

1. संसदीय स्वीकृति के बिना राजा कोई नये कर न लगाये ।
2. संसदीय पूर्व स्वीकृति के बिना राजा कोई धन उधार न ले ।
3. राजा बिना निश्चित कारण बताये किसी व्यक्ति को बन्दी न बनाये ।
4. राजा शान्तिकाल में युद्ध सम्बन्धी कानून न लागू करे । इसी श्रृंखला में 1679 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम' स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार राजा के लिये बन्दी बनाये गये व्यक्तियों पर न्यायालय में अभियोग चलाना आवश्यक कर दिया गया । 1689 में भी संसद द्वारा अधिकार पत्र (Bill of Rights) पर विलियम व मेरी के हस्ताक्षर कराये गये जिनमें भी समान प्रकृति की मांगे शामिल थी । उदाहरण के लिये,

1. राजा पूर्व संसदीय स्वीकृति के बिना कर नहीं लगायेगा ।
2. राजा वर्ष में कम से एक बार संसद की बैठक आवश्यक रूप से बुलायेगा ।
3. राजा ससंद की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई सेना नहीं रख सकेगा ।
4. संसद सदस्यों को भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार होगा । 1701 के समझौते अधिनियम (Act of settlement) को पारित कर संसद ने अंग्रेजी जनता के धर्म, न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा के प्रावधान किये । 1680-90 के मध्य में ही ब्रिटेन में ही द्विदलीय प्रणाली, कैबिनेट आदि संस्थाओं प्रक्रियाओं का निर्णायक रूप से विकास हो चुका था ।

इस समय-चुकी हेनोवर राजा अंग्रेजी नहीं जानते थे अत: राजा ने मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेना छोड़ दिया और फलस्वरूप मंत्रिमंडलीय प्रणाली की स्थापना हुई जिसमें वास्तविक शासन अधिकार धीरे-धीरे राजा के हाथ से निकलकर मंत्रीमंडल व संसद के हाथों में क्रमश: आते गये । जिसका परिणाम अन्त में यह हुआ कि राजा संवैधानिक प्रधान बन गया । 1714 के पश्चात संसदीय शक्तियों में निरन्तर बढ़ोतरी हुई । 1732 के अधिनियम द्वारा संसद में मध्यम श्रेणी के लोगों के प्रतिनिधियों का प्रवेश संभव हुआ । 1837 के सुधार नियम द्वारा मध्यम वर्ग व अन्य दस्तकारों व मजदूरों को मताधिकार दिया गया । 1884 में खेतीहर मजदूरों को मताधिकार दिया गया । 1911 के संसदीय अधिनियम से वित्तीय विधेयकों पर कॉमन सभा का एकाधिकार स्थापित हुआ । मताधिकार के विस्तार, कामेन सभा की शक्तियों. में वृद्धि, अधिकाधिक उत्तरदायी संस्थाओं का विकास ब्रिटिश संविधान के निरन्तर विद्यमान विकास प्रक्रिया की तार्किक परिणति के रूप में सामने आई । और यह प्रक्रिया अभी भी ब्रिटिश संविधानिक विकास के परिप्रेक्ष्य में जारी है । वस्तुत: इतिहास के इस विहंगावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उदारवादी सैद्धान्तिक प्रस्थापनाये अधिकाधिक मजबूत होती गई । और ब्रिटिश

संविधानवाद का ताना बाना इन्हीं आधारों के चारों ओर बुना गया । संवैधानिक विकास में अधिकाधिक जोर निरन्तर सुधार करने व उत्तरोतर विकास कर पूर्णता प्राप्त करने का रहा ।

आर्थिक परिप्रेक्ष्य में उदारवादी दर्शन का प्रभाव भिन्न प्रकार से महसूस किया गया । आरम्भिक उदारवाद ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का परिणाम माना गया । क्योंकि नवोदित पूँजीपति इस समय तक व्यापारिक प्रतिबन्धों की आलोचना करने लग गये थे तथा यह माना जाने लगा था कि राज्य अर्थव्यवस्था को नियमित व नियंत्रित न करें ताकि स्वतंत्र विकास संभव हो सके । यदि सरकार मजदूरी और मजदूरी के घंटे तय करती है या अन्य किसी प्रकार से आर्थिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करती है तो यह हस्तक्षेप अनावश्यक और आवांछनीय होगा । मौटेतौर पर यह माना जाने लगा कि राज्य का काम केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखना है और राज्य को उद्योग धन्धों, वाणिज्य, व्यापार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाने चाहिए । एडमस्मिथ ने अपनी पुस्तक “वेल्थ आफ नेशन्स" में स्वतंत्र व्यापार नीति की जोरदार वकालत की वहीं माल्थस, रिकार्डो जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि शासन तंत्र द्वारा आर्थिक नियमों में हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होता है । इन विचारकों ने प्रतिपादित किया कि ब्रहमाण्ड में क्रियाशील प्राकृतिक नियमों की तरह अर्थव्यवस्था में भी कुछ सुनिश्चित आर्थिक नियम कार्य करते हैं और इनमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये । उदाहरण के तौर पर मॉग व पूर्ति का नियम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है इस प्रकार ब्रिटिश सन्दर्भ में उदारवाद के आर्थिक आयाम थे-प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक नीतियों का विरोध, चुंगी की दरें कम करने की मांग तथा उन्मुक्त व्यापार का जोरदार समर्थन । ब्रिटेन में उन्मुक्त व्यापार के पक्ष में मजदूरों व पूंजीपतियों द्वारा 1825 के आसपास दबाव डाला गया । भूमि पतियों के, दबाव से पारित कार्न लॉ में संशोधन कर 1828 में अनाज के आयात में कुछ रियायतें दी गई । 1832 में-संसदीय सुधीर अधिनियम पारित किया गया । इस अधिनियम द्वारा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हुऐ सामाजिक परिवर्तनों को राजनीतिक स्वीकृति मिली । इन सुधारों द्वारा मताधिकार को आर्थिक आधार से जोडा गया, निर्वाचकों की संख्या में वृद्धि की गई तथा निर्वाचकों का क्षेत्र व वर्गों में पुर्नवितरण किया गया । निश्चित ही 1832 के सुधारों से ब्रिटिश राजनीतिक जीवन में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु इन सुधारों के पीछे ब्रिटेन में सम्भवित क्रांति का भय विद्यमान रहा । इन सुधारों से मताधिकार व्यवस्था उदार व विस्तृत हुई तथा समाज व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में सुधार के रास्ते खुले जो मूलत: उदारवादी दर्शन का ही परिणाम थे । 1833 में कानून बना कर ब्रिटिश सम्राज्य में दास प्रथा को गैर-कानूनी घोषित किया गया । 1835 में प्यूनिसिपल कारपोरेशन एक्ट पारित हुआ । 1846 में कार्नला को समाप्त कर दिया गया जिसकी आर्थिक उदारवादी एक लम्बें समय से मांग कर रहे थे । 1832 के सुधार कानून से औद्योगिक वर्ग का संसद में प्रतिनिधित्व बढ़ा और 1833 व 1843 में श्रमिकों के हित में फैक्ट्री एक्ट पारित किये गये जिसमें काम के घटै कम करने तथा उन्हें निर्धारित करने के प्रावधान किये गये । यहां तक आते आते शायद "अहस्तक्षेप वादी राज्य" के पारम्परिक उदारवादी दर्शन को ब्रिटिश समाज ने नकारने का सिलसिला आरम्भ कर दिया । वर्गीय सन्दर्भो में यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नवोदित पूंजीपति वर्ग जहां

अहस्तक्षेप वाद की वकालत कर रहा था वहां भूस्वामियाँ का कुलीन वर्ग उद्योग- धन्धों व अर्थ व्यवस्था के सरकारी नियमन का समर्थन करते थे । उदाहरण क लिए भूमिपतियों ने कार्नला हटाने का विरोध किया । इसी दौरान 1838 में चार्टर आप डिमान्डस तैयार कर श्रम जीवी वर्ग ने प्रसिद्ध "चार्टिस्ट आन्दोलन" चलाया जो मूलत: निम्न मांगें लिये हुये था (1) कामन सभा का वार्षिक चुनाव (2) गुप्त मतदान प्रणाली (3)व्यस्क पुरूषों को मताधिकार (4) समान निर्वाचन मण्डल (5) कामन सभा की सदस्यता के लिए सम्पति को योग्यता समाप्त करना । यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन अपने घोषित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सका किन्तु इसके कारण श्रमजीवी वर्ग की हालत सुधारने के लिए अनेक संसदीय कानून पारित किये गये जैसे-1842 का माइन्स एक्ट 1847 का टेन आवर्स वर्क एक्ट आदि ।

1870 तक उदारवाद को औद्योगिक व व्यापारिक वर्ग का दर्शन माना गया । मार्क्स ने पूंजीवादी व उदारवाद में कोई अन्तर स्थापित नहीं किया । इंग्लैण्ड में उदारवाद ने मूर्त रूप लेना प्रारम्भ किया और इसने एक स्पष्ट व्यवस्था, विचारधारा व दृष्टिकोण का रूप ग्रहण किया जो अपने स्वरूप में संसदात्मक सरकार के कहीं अधिक नजदीक था जिसमें उत्तरदायी शासन, स्वशासन, स्वतंत्रता धर्म निरपेक्षता के विविध आयाम थे । धीरे-धीरे औपचारिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का जन्म हुआ । यूरोप और अमेरिका उदारवादी दलो का संगठन हुआ जिन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रक्ष लिया, निरंकुशता का विरोध किया तथा सभा और स्वतंत्रता के बीच का समांजस्य स्थापित किया । अठारहवी शताब्दी तक का ब्रिटिश उदारवाद मूलत: संरक्षण और सुधार पर जोर देता था जबकि 19 वीं शताब्दी में प्रगति की विशेष वकालत की गई । सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश उदारवाद ने परम्परावाद को भी कई अर्थों में जीवित रखा और उसे परिष्कृत किया तथा एक ऐतिहासिक निरन्तर को जीवित बनाये रखा । अंग्रेजी इतिहास की दो महत्वपूर्ण कृतियों ने राजा की संस्था को फ्रांस की तरह उखाडा नहीं बल्कि राजा की महत्वाकांक्षा ने निरंकुशता पर प्रभावशाली जन नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की । फ़्रांसीसी उदारवाद जैसा कि स्पष्ट है ब्रिटेन से बिल्कुल भिन्न किस्म का था और इसमें परिवर्तन व संघर्ष की निरन्तर पर बल दिया गया । चुकी फ्रांस, स्पेन और रोम शक्तिशाली साम्राज्यों से दोनों तरफ से घिरा हुआ था अत: अस्तित्व की सतत् लडाई ने शक्तियों के केन्द्रीयकरण तथा सामान्तवाद के पूर्ण उन्मूलन को आवश्यक बना दिया । केन्द्रीयकरण और समता-स्थापना इस लिये फ़्रांसीसी क्रांति के दो महत्वपूर्ण आधार बने । किन्तु जैसे जैसे राजतंत्र पुन: शक्तिशाली व निरंकुश होता गया असंतोष बढता गया । वस्तुत: फ्रांस में माण्टेसक्यू व रूसो को आधार बना कर उदारवाद का एक नया ढांचा गढा गया । अमेरिकी उदारवाद और फ़्रांसीसी उदारवाद में काफी हद तक समता दिखाई पड़ती है क्योंकि दोनों देशों में उदारवादी चिंतन को आधार बनाकर राजनीतिक क्रांतिया किया जाना संभव हुआ है । अंग्रेजी उदारवाद काफी सीमा तक परम्परावादी व विवेकवादी रहा तथा उसका आग्रह संशोधन व सुधार करने का रहा जबकि फ्रांस और अमेरिका में उग्रवाद व परिवर्तनवादी की प्रधानता देखने को मिली । ब्रिटिश उदारवाद ने संवैधानिक क्रांतियों, अधिकार पत्रों आदि की स्वीकृति के बावजूद ब्रिटिश शासन प्रणाली ने कोई मौलिक या उग्र परिवर्तन प्रस्तावित नहीं किया । ब्रिटिश उदारवादी

विचारक लाक उदारवादियों में सर्वाधिक रूढ़िवादी विचारक माना जाता है किन्तु उसने भी परम्परागत शासन व्यवस्था के ढाँचे को उखाडने की प्रेरण नही दी जैसी कि अमेरिका या फ़्रांसीसी उदारवाद के सन्दर्भ में हमें देखने को मिलती है ।

फ्रांसीसी उदारवाद के मध्यमवर्गीय स्वरूप के प्रतिनिधि रूसो थे जिन्होंने जन सम्प्रभुता का जयधोष करते हुये फ्रांसीसी उदारवाद को क्रातिकारी स्वरूप प्रदान किया । इंग्लैण्ड से उदारवादी विचारधारा का प्रारम्भ होता है किन्तु इसका स्वरूप सुधारवादी था । इसके विपरीत फ्रांस और अमेरिका में उदारवाद अधिकाधिक उग्रवादी रूप धारण करता चला गया जिसका कारण यह था कि इंग्लैण्ड ने अपनी सुधार प्रियता व अनुदारवादी परम्परा की निरन्तर में एक संवैधानिक व्यवस्था उदारवादी आधारों पर स्थापित करने में सफलता प्राप्त की जबकि फ्रांस व अमेरिका में संवैधानिक शासन की स्थापना के लिये क्रातिकारी संघर्ष का जन्म हुआ । इंग्लैण्ड के उदारवादी बेथम, जेम्स मिल, प्रो. जे. एस.मिल तथा लॉक तक, संसदीय सुधारों पर बल देते रहे ताकि मध्यमवर्ग का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व व राजनीतिक भागीदारी मिल सकें जबकि फ्रांस और अमेरिका के उदारवाद ने गणतंत्रीय स्वरूप धारण किया । इंग्लैण्ड के उदारवादियों ने राजतंत्र पर सीधा प्रहार न करते हुये उसकी शक्तियों में व्यापक कमी संवैधानिक सुधारों व क्रमिक परिवर्तनों के जरिये की जबकि फ्रांसीसी व अमेरिकी उदारवाद ने राजतंत्र को प्रजातंत्र के मार्ग में बाधा समझते हुये इसका कडा विरोध किया । ब्रिटिश राजतंत्र समयानुकूल व जनता के दबाव के अनुरूप अपने आपको परिवर्तित कर पाने में सफल हुआ वहां दूसरी ओर फ्रांस व अमेरिका में राजतंत्र ने मध्यम वर्ग को शासन अधिकार नहीं दिये फलस्वरूप जनता विद्रोह के लिये उतारू हुई और गणतंत्रात्मक सरकारें राजतंत्र को उखाड कर स्थापित की गई । अमेरिका में भी इसी प्रकार ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार को सशस्त्र संघर्ष के बाद उखाड फेंका गया और गणतंत्र की स्थापना हुई ।

ब्रिटिश उदारवाद सुधारवादी व राजतंत्र समर्थक था तथा उसने उग्रसाधनो का सहारा नहीं लिया किन्तु फ्रांसीसी व अमेरिकी उदारवाद का स्वरूप गणतंत्रवादी व उग्र रहा । यूरोप के अन्य देशों में भी उदारवाद इन दो छोरो के मध्य रहकर संविधानवाद को प्रभावित करता रहा । केवल अन्तर काल क्रम का रहा । जो परिवर्तन ब्रिटेन व फ्रांस की संवैधानिक व्यवस्थाओं में समाते चले गये वे बाद में जाकर यूरोप के अन्य देशों की संवैधानिक प्रणालियों के अंग बने ।

15 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई उदारवादी चेतना ने उन्नीसवीं सदी तक आते आते विश्वव्यापी प्रभाव छोडा । विचार भाषण और कार्य की स्वतंत्रतायें आधारभूत उदारवादी मूल्यों के रूप में सभी देशों में स्वीकृति की गई । इंग्लैण्ड ने उदारवाद को आधार बनाकर औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का संचालन किया गया और ससंदात्मक प्रजातंत्र की संस्थाओं व प्रक्रियाओं का विकास किया गया । अमेरिका ने भी स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उदारवादी विचारधारा को अपनाया और यूरोप के अन्य देशों में भी कमोवेश राजनीति व अर्थनीति पर उदारवाद ने अमिट छाप छोडी ।

11.6 यूरोप के अन्यदेशों में उदारवाद और संवैधानिक विकास पर उसका प्रभाव:-

1815 से 1850 तक ब्रिटेन में उदारवादी दर्शन काफी लोकप्रिय रहा तथा उसने संवैधानिक विकास क्रम को निर्णायक रूप से प्रभावित किया । उक्त अवधि में अनेक उदारवादी कानून बने तथा सुधार प्रजातंत्र, विवेकवाद और व्यक्तिवाद के प्रति ब्रिटिश आग्रह अभी भी प्रभावी ढंग से विद्यमान है । ब्रिटिश उदारवादियों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, और व्यक्ति के महत्व पर विशेष बल दिया जबकि अन्य यूरोपीय देशों के उदारवादियों ने सम्पति के अधिकार पर बहुत जोर दिया ।

1789 में हुई फ्रांस की ऐतिहासिक क्रांति कई मायनों में उदारवादी विचारधारा पर अवलंबित थी । इसने दास प्रथा को समाप्त कर विधि के साथ सब की समानता की घोषणा को अभिव्यक्ति दी । सामन्ती विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये और सामन्ती शासन व्यवस्था का अंत हो गया । 26 अगस्त 1789 को मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा भी क्रांति के बाद की गई । फ्रांस की क्रांति ने उदारवादी सिद्धान्त के रूप में संविधानवाद को प्रतिष्ठित किया तथा निरंकुश तानाशाही की जड़ों पर आक्रमण किया ।फ्रांस का उदारवाद वास्तव में 1789 की विश्वप्रसिद्ध क्रांति से आरम्भ होता है ।

फ्रांसीसी क्रांति का विश्व व्यापी प्रभाव हुआ और इसने यूरोप में उदारवाद के प्रचार प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई । क्रांति ने राजनीतिक क्षेत्र में लोकतंत्र का प्रतिपादन किया तथा मानव अधिकारों की घोषणा कर और स्वतंत्रता समानता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर व्यक्ति के महत्व को स्वीकार किया जो उदारवाद का मूल आधार था । वस्तुत: फ्रांसीसी उदारवाद का स्वरूप भिन्न प्रकृति लिये हुआ था । 1789 को फ्रांसीसी क्रांति उदारवाद का मूल स्त्रोत व अभिव्यक्ति थी । फ्रांस में 1830 में हुई जुलाई क्रांति ने निरकुशतंत्र और पादरियों के प्रमुख स्थापित करने की एक प्रबल कोशिश को विफल कर दिया किन्तु जन असंन्तोष अभी भी व्यापक था । औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की स्थिति दयनीय थी फलस्वरूप फरवरी 1848 में बुर्जआ उदारवादीयें ने पेरिस में एक कामचलाऊ सरकार की स्थापना की जो कि अल्पजीवी रही । वस्तुत: फ्रांस में काफी समय बाद एक गणतंत्रवादी संविधान का निर्माण हो सका । जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी । फ्रांस की जनतांत्रिक सरकार ब्रिटेन की तुलना में कम सुरक्षित रही और राजनीतिक अस्थिरता लगातार बनी रही । 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस का उदारवाद और अधिक सशक्त होता जान पड़ा जब सामाजिक कल्याण के अनेक कानून पारित किये गये । इसी प्रकार हालेण्ड, बेल्जियम, नार्वे, स्वीडन 'आदि देशों में भी उदारवादी चेतना के अनुरूप समाज कल्याण के लिए कानूनों का निर्माण किया गया । मताधिकार का विस्तार किया गया तथा जनतांत्रिक संस्थायें और प्रक्रियायें कमोवेश रूप में 20 वी. शताब्दी के आरम्भ में सुनिश्चित स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी ।

19 वी. शताब्दी में यूरोप व अमेरिका में उदारवादी दर्शन स्र्वाधिक लोकप्रिय हुआ और इसका प्रभाव तत्कालीन सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक-जीवन के विविध पहलूओं पर व्यापक

तौर पर देखा गया । उदारवादी दर्शन ने यूरोप व अमेरिका के संविधानवाद, इतिहास, अर्थरचना, औद्योगिक विकास आदि को सीधे प्रभावित किया । उदारवाद ने स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिपेक्षता, लोकतंत्र आदि के आदर्शों को प्रचारित और प्रसारित कर इन्हें सामान्य जन मान्यता प्रदान की जिससे पुरातन पारम्पारिक विशेषाधिकारों व असमता की विरासत वाली व्यवस्थाओं का अन्त हुआ और एक नवीन युग का सुत्रपात हुआ । सार्वभौमिक मताधिकार पर आधारित संसदीय संस्थाओं की स्थापना हुई, राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता मिली और लोकतंत्र राष्ट्रीय स्वतंत्रता व आर्थिक विकास का कल्याणकारी राज्य का आदर्श स्थापित हुआ । यद्यपि इस उदारवादी दर्शन की मान्यताओं, विशवासों और आग्रहों में युगानुकुल परिवर्तन आते गये किन्तु इसका एक सारभूत भाग सदैव विद्यमान रहा जो परिवर्तित परिस्थितियों और आकस्मिकताओं के बावजूद नहीं बदला।

11.7 सारांश

इस इकाई में उन परिस्थितियों व कारणों की व्याख्या की गई जिनसे यूरोप में उदारवादी विचारधारा लोकप्रिय होती गई । उदारवादी चेतना का आरम्भ सामन्तवाद के विघटन की पृष्ठभूमि में हो गया था किन्तु मध्यकालीन पुर्नजागरण, विवेकवाद, धर्मसुधार आन्दोलन, औद्योगिक क्रांति ने उदारवादी मान्यताओं को व्यापक स्वीकृति प्रदान की वहां दूसरी ओर ब्रिटिश संवैधानिक विकास क्रम पर उदारवाद ने गहरी छाप छोडी । ब्रिटेन में मंत्रिमंडल प्रणाली व संसदीय व्यवस्था का विकास इसी विचारधारा का प्रतिफल था । अमेरिका फ्रांस व यूरोप के अन्य देशों में भी संविधानवाद विवेकवाद व प्रजातंत्र वाद के आदर्शों प्रतिष्ठित हुये और उन आर्दशों के महत्व को वर्तमान सन्दर्भो में नकारा नहीं जा सकता ।

11.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न-1 उदारवाद का क्या अभिप्राय है ।

2. उदारवाद की आधारभूत मान्यताओं को लिखिये ।
3. उन कारणों को बताइये जिनके कारण उदारवाद का यूरोप में विकास हुआ ।
4. ब्रिटेन में उदारवाद का विकास किस प्रकार हुआ ।

11.9 सन्दर्भ ग्रथं (Further Readings)

(1) Sir Ivor Jennings - The English Constitution.

(2) H.J. Laski - Parliamentary government in England 1938.

(3) H.J. Laski - The Rise of European Liberalism 1936.

(4) F.A. Ogg - English government and Politics, Newyork,1929.

(5) G.H. Sabine - A History of Political Theory

(6) A.V.Dicey - Introduction to the study of Law of Constitution, London Mecmillian.

(7) ए.डी. आर्शीवादम - राजनीति विज्ञान 1989, दिल्ली, एस चंद एण्ड क.

(8) L.T. Hobhouse - Liberalism, London, 1911

(9) Liberalism' in "Encyclopedia of Social Sciences".

इकाई - 12

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 यूरोप में आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय व प्रबुद्ध-काल (Age ऑफ Enlightment)

12.3 धर्मसुधार आन्दोलन से सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप का धार्मिक जीवन

12.4 अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक जीवन का विश्लेषण

12.5 बौद्धिक जीवन के आयाम - दार्शनिक और विचारक

12.6 बौद्धिक जीवन के आयाम - विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा

12.7 बौद्धिक जीवन के आयाम - कला और साहित्य

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्न

12.10 सन्दर्भ पुस्तकें

12.0 उद्देश्य:

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे:-

* सत्तरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में हुआ बौद्धिक आन्दोलन (प्रबुद्ध काल) क्या था? उससे विचारों के जगत और चिन्तन के क्षितिज में कौन-कौन से महान् परिवर्तन हुए?
* धर्म सुधार आन्दोलन के पश्चात् ईसाई धर्म में पनपे सम्प्रदायवाद ने यूरोपीय धर्मतंत्र को किस प्रकार प्रभावित किया?
* अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक उदारता की ओर रूचि बढ़ी । पोप की सत्ता सीमित हो गई । राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप कैसे कम हुआ?
* अठारहवीं शताब्दी में प्रबद्ध-काल के प्रमुख दार्शनिकों एवं विचारकों का यूरोप के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा
* विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा के क्षेत्रों में जो उन्नयन हुआ, उसका यूरोपवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा?
* कलाओं के क्षेत्र में वास्तुकला, चित्रकला व संगीत में शास्त्रीयतावाद (Classicism) का पदार्पण हुआ जिसके फलस्वरूप नई शैलियों का प्रदुर्भाव हुआ ।
* साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न विधाओं में महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई । प्रमुख साहित्यकारों का क्या योगदान रहा.?

12.1 प्रस्तावना

14 वीं से 16 वीं शती के मध्य यूरोप में यूनानी-लातीनी संस्कृति का उत्थान हुआ । उसके फलस्वरूप बुद्धिवाद और मानववाद का जन्म हुआ । यूरोप के इतिहास में इसे पुनर्जागरण (रिनेसांस) की संज्ञा दी गई है । पुनर्जागरण, मध्यकाल और आधुनिक युग की संस्कृति का समय था । इस युग में मध्यकालीन ईश्वरवादी दृष्टिकोण के स्थान पर मानववादी विचार का उत्थान हुआ । जीवन में सर्वत्र परिवर्तन का साम्राज्य था । विश्व की -विशालता और विविधता मानसपटल पर अंकित हो रही थी । मानव बुद्धि की सर्वतोमुखी ज्योति उसके जटिल मर्मो को अलोकित करने में समझी जाने लगी थी । नियति में निश्चित रूप से विश्वास था, किन्तु यह धारणा प्रमुख थी कि मनुष्य अपने नियमन और संतुलन से उसे अनुरूप कर सकता है ।

12.2 यूरोप में आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय व प्रबुद्ध-काल (Age of Enlightenment)

यूरोप में इससे आधुनिक संस्कृति का अभ्युदय हुआ । मानव के ज्ञान की परिधि बहुत विस्तीर्ण हो गई । मनुष्य जीवन लीला के प्रति एक नूतन अभिरूचि उमड़ पड़ी । यूरोप में 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में एक बौद्धिक आन्दोलन हुआ जिसमें ईश्वर, धर्म, प्रकृति और मनुष्य को विश्वव्यापी संदर्भ में देखा गया जिससे विज्ञान, दर्शन, कला और राजनीति के क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । इसे प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) के नाम से पुकारा जाता है । इस प्रबुद्ध काल का केन्द्रीय तत्व था- तर्क । तर्कणापरक व्यक्ति ने ज्ञान, स्वतंत्रता और खुशहाली को अपना लक्ष्य बनाया ।

प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) के उभरते हुए स्वरूप ने ज्योहीं सत्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी में प्रवेश किया, उसे विचारों के जगत और चिन्तन के क्षितिज में एक महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा । विद्वता का स्थान व्याख्या और चिन्तन का स्थान आलोचना ने ग्रहण कर लिया । बुद्धिवाद का जोर बढ़ने लगा । परम्परा के प्रति विरक्ति और प्रज्ञा के प्रति आस्था उमडने लगी । 1715 ई. में लुई चौदहवें के निधन से 1789 ई. में फ्रांसीसी क्रांति के प्रादुर्भाव तक इस बौद्धिक आन्दोलन का बोलबाला रहा । इसे प्रबुद्धकाल का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में हम अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख करेंगे । साथ ही तत्कालीन बौद्धिक विकास का मनुष्य के इस लोक के भौतिक जीवन तथा परलोक के मोक्ष से धनिष्ठ संबंध है । धार्मिक चिन्तन और बौद्धिक उपलब्धियाँ मनुष्य के सुख-समृद्धि के प्रमुख आधार स्तम्भ धार्मिक स्तम्भ है ।

धार्मिक जीवन :

12.3 धर्मसुधार आन्दोलन से सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप का धार्मिक जीवन

मध्यकाल में विभिन्न चिंतको ने तर्क के स्थान पर आध्यात्मिक ईश्वर भीमांसा, श्रुति और धर्म को अधिक महत्व दिया । वे तर्क या विज्ञान की उपेक्षा करते हुए नजर आने लगे ।

पोप की सत्ता के अंतर्गत रोमन गिरजाघर अन्धविश्वासों एवं भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गये थे । ईसाइ धर्म का पांखडपूर्ण प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं आत्मा पर हावी हो गया था । पुनर्जागरण और प्रौटेस्टेंटवादी सुधारों ने ऐसी विकृत पोपलीला को निरस्त करने के प्रयास किये । इसके प्रतिरोध में कैथोलिकों ने अपने धर्म तंत्र में आई कमजोरियों को हटाने का प्रयास प्रतिवादात्मक धार्मिक आन्दोलन के द्वारा किया । इस प्रयास से कई यूरोपीय देशों में कैथोलिक धर्म की खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: स्थापित हुई ।

धर्म-सुधार के पश्चात् ईसाई धर्म प्रमुख दो शाखाओं में विभक्त हो गया रोमन केथोलिक एवं प्रोटस्टैंट । प्रोटस्टैट धर्म में धार्मिक सुधार की अलग-अलग पद्धतियों के कारण कुछ अन्य सम्प्रदाय बन गये । स्विटजरलैंड में ज्विंगली और कालविन ने लूथर से भी अधिक उग्रता के साथ पोप की सत्ता का खंडन किया । कालविन का सम्प्रदाय और प्रोटेस्टैंट मत का अत्यन्त उग्रपंथी शाखा हो गया औरवह "प्रेसबिटेरियन" (Presbyterian) शाखा मत का खूब प्रचार हुआ । इंग्लैण्ड में धर्म सुधार कार्य राजनीतिक आधार को लेकर आरम्भ हुआ । शासकों के आपसी धार्मिक मतभेदों के लम्बे संघर्ष के पश्चात् एक नया चर्च एंगलिकन । (Anglican Church) नाम से स्थापित हुआ जो न पूर्णरूपेण कैथोलिक ही था न प्रोटैस्टैंट । नीदरलैंड में उत्तरी भाग ने प्रोटेस्टैंट धर्म अपना लिया किन्तु दक्षिणी भाग कैथोलिक. बना रहा । बेल्जियन कैथोलिक थे । नार्वे तथा स्वीडन के भी प्राटेस्टैंट धर्म प्रभावी रहा । उस समय हालैंड और फांस से भागे हुए व्यापारी शरणा थी इंग्लैंड में बस गये । वे प्रोटेस्टेंट मत के थे और वे "हयूगेनॉट" Huguenots" कहलाते थे । स्पेन, फ्रांस और आस्ट्रिया के राजा कैथोलिक मत को मानते थे । इस प्रकार यूरोप के अधिकांश देश प्रोटेस्टैंट धर्म के झंडे के नीचे आ गये ।

कहीं जनता ने तो कहीं राजा ने इस धर्म सुधार आन्दोलन की बागडोर संभाली और प्रोटेस्टेंट धर्म को भी कैथोलिक धर्म के समकक्ष मान्यता दिलवाई । इस प्रकार यूरोप के निरंकुश और प्रबुद्ध निरंकुश राजवंश ईसाई धर्म की इन दोनों शाखाओं में से किसी एक के कट्टर अनुयायी हो गये । सौ साल से अधिक समय तक इस धार्मिक वैभनस्य के कारण यूरोपीय राज्यों में गृह-युद्ध तथा राजविप्लब हुए । धार्मिक कट्टरता की आग में कई लोग स्वाहा हो गये । धर्म, राजा और प्रजा के वैमनस्य का बहुत बड़ा कारण बना ।

सतरहवीं सदी से यूरोप में एक नयी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ । इसके पूर्व धर्म के नाम घोर अत्याचार होता था । लेकिन धर्म सुधार आन्दोलन के कारण लोगों के धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होना आवश्यक हो गया । अब लोग मांग करने लगे कि धर्म पालन करने की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए । यूरोप में धीरे-धीरे धार्मिक उदारता का प्रवेश होने लगा ।

राजनीति पर से धर्म के प्रभाव को घटाने में शक्तिशाली राजाओं से भी खूब सहायता मिली । पहले हर देश की राजनीति, अर्थनीति एवं समाज पर चर्च का बोलबाला था । चर्च की अपनी एक अलग सरकार होती थी । वे राज्य के भीतर एक राज्य की तरह होते थे और अपने को राजा के ऊपर समझते थे । राजा रोम के पोप से आज्ञा लेता था और उसी के अनुसार काम करता था । इस कारण मध्युग में राजा और पोप के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा । लेकिन अन्त में पुनर्जागरण और धर्म सुधार के कारण राजाओं के लिए पोप को सत्ता में बने रहना कठिन हो गया । राजाओं और पोप के बीच सम्बन्ध बिगड़ते गये । अन्ततोगत्वा कई शासकों

ने पोप से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया । पोप का प्रभाव क्षीण हो गया । इसके बाद भी धर्म और राज्य का सम्बन्ध कायम रहा, लेकिन राजा लोग राजधर्म के अतिरिक्त और धर्मो के प्रति उदारता की नीति अपनाने लगे । राज्याश्रिम चर्चों की स्थापना हुई । इससे राज्य की संप्रभुता पूरी हुई । इसी संदर्भ में इग्लैंड के राजा हैनरी अष्टम का पोप से सम्बन्ध विच्छेद और नेपोलियन महान् के पोप के साथ धार्मिक समझौते के उदाहरण पेश किये जा सकते हैं ।

12.4 अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक जीवन का विश्लेषण

अठारहवीं शताब्दी में पोप की सत्ता कुछ ही यूरोपीय राज्यों तक सीमित हो गई । अधिकतर यूरोपीय राज्यों ने चर्च को राज्य का अंग बना लिया । चर्च, राज्य के नियंत्रण में आ गये । राज्य की संप्रभुता पूरी हो गई और राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप क्षीण हो गया । राजा की शक्ति और निरंकुशता में वृद्धि हुई । पर राजाओं की निरंकुशता में ज्ञानोदय के साथ प्रबुद्धता आ रही थी । वे धर्म निरपेक्ष होकर धार्मिक स्वतंत्रता की विचार धारा की ओर अग्रसर होने लगे । धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धार्मिक सहिष्णुता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ । धर्म के नाम पर अत्याचार बन्द हो गये । अब धर्म सुधारकों को फांसी के तख्ते पर नहीं झूलना पड़ता था । धर्म के क्षेत्र में जनसाधारण स्वतंत्र हो गया । प्रोटेस्टैंट धर्म से प्रभावित राज्यों में शिक्षा गिरजाघरों के ही अधिकार क्षेत्र में रही ।

फांस, स्पेन, आस्ट्रिया, इटली आदि यूरोपीय देशों में कैथोलिक धर्म का प्राबल्य रहा । यहाँ पोप के प्रति श्रद्धा बनी रही । इस प्रबुद्ध काल के दौरान यूरोप का समाज तीन भागों में विभाजित था- 1. कुलीन वर्ग 2. पादरी वर्ग 3. जन-साधारण । कुलीन तथा बड़े-बड़े पादरी विलासिताका का जीवन व्यतीत करते थे जबकि तीसरे वर्ग के मनुष्यों को भर पेट भोजन नहीं मिलता था । पादरी वर्ग को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त था । बड़े पादरी व छोटे पादरी के रूप में विभाजित था ।

(1) **बड़े पादरी-** इसके अन्तर्गत विशप, आर्क विशप, एबट तथा कार्डीनल प्रमुख थे । ये लोग बड़े सम्पन्न थे और विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे । इनके हाथ में चर्च के समस्त पद थे । मठों से इनको लाखों रूपयों की आय होती थी । वे राजा की भांति न्याय करते थे । किसानों से दशांश (Tithe) वसूल करते थे । रोमन कैथोलिकों, प्रोटेस्टेंटो तथा यहूदियों से भी कर वसूल करते थे । लेकिन उनका नैतिक स्तर गिरा हुआ था । उनमें से अधिकांश तो ईश्वर के अस्तित्व तक में विश्वास नहीं करते थे ।

(2) **छोटे पादरी-** इन लोगों की नियुक्ति साधारण वर्ग से होती थी । वे अधिकतर किसान होते थे । वे सदाचारी और ईमानदार थे । चर्च के समस्त धार्मिक कार्य वे ही करते थें वे अपनी निर्धनता के कारण महत्वहीन थे । अपने सदाचार और त्याग के कारण समाज में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी । बड़े पादरियों की विलासिता और समृद्धता उनको कांटे की भांति चुभती थी । वे सुशिक्षित थे और क्रान्तिकारी साहित्य का अध्ययन करते थे । उनका जनतंत्रवादी प्रवृत्ति की ओर झुकाव था । फ्रांस की राज्य क्रांति के समय उन्होंने जन साधारण का साथ दिया ।

इस प्रकार प्रबुद्धकाल में प्रचलित अंधविश्वासों और परम्पराओं को समाप्त करने के लिये अनेक प्रयास किये गये । यूरोप में धर्म संबंधी "सोसायटी ऑफ फ्रेंडस्" के कचेकर्स (Quakers)

नाम से सम्बोधित सदस्यों का विश्वास था कि सच्चे धर्म को व्यक्ति के बाहरी क्रियाकलापों से कोई सरोकार नहीं है बल्कि वह व्यक्ति के निजी और विशुद्ध व्यक्तिगत मामलों से सम्बन्ध है । व्यवहारवादियों (Methodists) ने धार्मिक जीवन को नियमित करने की इच्छा व्यक्त की ओर उन्होंने अनेक धर्मार्थ कार्य किए । चरबरी (Cherbury) के लार्ड हरबर्ट ने "इंगलिशडिज्म" (English deism) की स्थापना की । धार्मिक चिंतक (Edward Stilling Fleet) एडवर्ड स्टिलिंग फ्लीट ने कहा, चर्च के रूप में सरकार ईश्वरीय वाक्य द्वारा नियंत्रित बुद्धि है । जर्मन आलोचक लोसिंग (Lessing) ने इस बात पर जोर दिया कि सभी धर्म ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की मानवीय कोशिश है ।

यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के धार्मिक जीवन के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मानसिक क्षितिज के विस्तार के कारण यूरोप का तत्कालीन धार्मिक वातावरण अंधविश्वासों, पांखडों एवं भ्रष्टाचारों के प्रदूषण से मुक्त हुआ । धार्मिक भावना जनकल्याण से जुड़ गई । राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप कम होने लगा । अब धर्म का संचालन प्रशासकों के सानिध्य में होने लगा । धार्मिक स्वतंत्रता के युग का उदय हुआ एवं धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा उभरने लगी ।

12.5 बौद्धिक जीवन- के आयाम-दार्शनिक एवं विचारक:

सत्रहवी । शताब्दी वैज्ञानिकों की शती थी । इस शताब्दी में वैज्ञानिकों अनुसंधानों ने परिवर्तन की दिशाएं निर्धारित की । न्यूटन और गेलिलियों ने विचारों की कांति को गति प्रदान की । इस प्रकार यूरोप में वैज्ञानिक बुद्धिवाद के साम्राज्य का श्री गणेश हुआ । प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक लार्ड बालफोर (Lord Balfour) नेएक बार कहा था कि क्रमश: विज्ञान, दर्शन और ईश्वर मीमांसा के उद्देश्यों से 18 वीं शताब्दी की शुरूआत न्यूटन की पुस्तक "प्रिनसिपिआ" (Principia) लॉक की पुस्तक "एसे कन्सर्निंग ह्यूमैन अंडरस्टेंडिंग (Essay Concerning Human Understanding) और टोलैंड (Toland) की देववादी पुस्तक "क्रिश्चिअनिटी नॉट मिस्टिरियस (Christianity Not Mysterious) के साथ होती है ।

दार्शनिक एवं विचारक-

अठारहवीं शताब्दी के प्रबुद्धकालीन (Age of Enlightenment) दर्शन ने मानवीय और सामाजिक आदर्श उपस्थित किए जो आज भी मानवता के आशा स्तम्भ हैं । इनमें विद्वता और सक्रियता का संगम है । पहली पंक्ति के दार्शनिक चिंतकों का जो सिलसिला बेकन से शुरू हुआ, वह स्पीनोजा और डेसकोर्टेज, जॉन लॉक और न्यूटन आदि से होता हुआ इमैंनुअल कैंट पर आकर समाप्त होता है । इनके बराबर महत्वपूर्ण चिन्तकों की एक दूसरी पंक्ति भी थी, जिसकी शुरूआत डेसकार्टेज से मोन्तेस्वयू वाल्तेयर, दिदरो और रूसों आदि से होती है और जिसका अंत होता है फ्रांस के असंख्य क्रांतिकारी पैम्पलेटों में, जो भौतिक चिन्तन से ओत प्रोत थे ।

दार्शनिक-

18 वीं शताब्दी में यूरोप के प्रमुख दार्शनिक का उल्लेख नीचे किया जा रहा है-

(1) **मोन्तेस्क्यू** (Montesquieu) & मोन्तेस्क्यू फ्रांस के दार्शनिकों में अग्रणी है । बह कुलीन वर्ग का एक विद्वान् और अध्ययनशील न्यायाधीश था । वह क्रान्तिकारी नहीं था परन्तु कालान्तर में उसके विचारों ने क्रान्ति में बहुत योग दिया । वह राजा का विरोधी नहीं था परन्तु वह दैवी अधिकारों का विरोधी था । यूरोप के विभिन्न देशों का भ्रमण कर उसने अपने ज्ञान को अनुभूत बनाया । उसने फ्रांस की प्राचीन संस्थाओं, विशेषकर चर्च की कटु आलोचना की । उसके नवीन विचारों और व्यंग्यात्मक शैली ने लोगों पर गहरा प्रभाव डाला । उसकी दृष्टि में इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था संसार में सर्वश्रेष्ठ थी क्योंकि वहां जनता की स्वतंत्रता सुरक्षित थी । 1791 ई. में फ्रांस का संविधान बनाते समय उसके विधि विचारों का ध्यान रखा गया ।

मोन्तेस्क्यू ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "द स्प्रिट ऑफ लॉज" (The spirit of Laws) की रचना 1748 ई. में की । उसने शक्ति पार्थक्य के प्रसिद्ध सिद्धान्त" का प्रतिपादन किया जिसका सार यह था कि शासन की तीन शक्तियां- कार्य पालिका, विधायिका और न्यायपालिका एक ही व्यक्ति के हाथ में नहीं होनी चाहिए । शक्ति पृथक करण से ही निरंकुशता का अन्त हो सकता है । उसने तर्क दिया कि राज्य के कानून, पर्यावरण, जलवायु, भूमि की स्थिति, लोगों के स्वभाव, उनके व्यवसाय और परम्पराओं से सम्बन्ध होने चाहिए । उसने सरकारों को तानाशाह, राजवंशी और गणराज्य के वर्गों में रखा । इसका आधार क्रमशः डर, सम्मान और सद्गुण थे ।

(2) **वाल्टेयर** (Voltaire)- बौद्धिक जगत में बाल्टेयर युग प्रवर्तक सिद्ध हुआ । वह अपने युग का महान् कवि, दार्शनिक, निबन्धकार, साहित्यकार और इतिहासकार था । लगभग 60 वर्ष तक यूरोप के बौद्धिक वातावरण पर उसका अखंड शासन रहा । उसके व्यंग्य, उपहास और प्रहारों ने अंधविश्वास और कट्टरता की धज्जियों उड़ा दी । वह धार्मिक पाखंडों तथा पादरीवाद का घोर विरोधी था । चर्च को वह एक "कुख्यात वस्तु" कहता था । इसका अर्थ यह नहीं कि वह नास्तिक था । वह केवल, चर्च के धार्मिक आडम्बरों का विरोधी था । उसका सिद्धान्त था कि "ईश्वर में विश्वास करो तथा अच्छा आदमी बनो ।" वह कहा करता था कि "गिरजाघरों में तो मूर्खों को शान्ति मिलती है ।" इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में उसके विचार क्रान्तिकारी थे । उसका मत था कि मनुष्य जीवन कुछ स्थिर, सार्वभौम तथा शाश्वत सिद्धान्तों के अनुसार चलता है । वह नए युग की स्थापना करने के लिये प्राचीन समय के नाम को ही पृथ्वी से मिटाना चाहता था।

तत्कालीन फ्रांस के सभी संस्थानों की उसने आलोचना की । वह स्वतंत्रता का उग्र समर्थक था । उसका नारा था कि "अप्रिय वस्तु को कुचल दो ।" फ्रांस के जनसाधारण में बौधिक जागृति उत्पन्न करने में उसका सर्वाधिक योगदान रहा । अपनी उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा के कारण उसको मृत्यु से पूर्व यूरोप का "साहित्य सम्राट" मान लिया गया था । उसने इतिहास को नया दृष्टिकोण प्रदान किया । उसकी प्रस्तुत "एज ऑफ लुई फोरटीन" (Age of Louis XIV) में उसके नवीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण की झांकी मिलती है ।

वह अंग्रेजी न्यायविधान का बड़ा प्रशंसक था क्योंकि इंग्लैण्ड की न्याय व्यवस्था में किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाता था । वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कट्टर समर्थक था ।

एक बार उसने एक व्यक्ति से कहा था- "यद्यपि आपकी बात से मैं सहमत नहीं हूं परन्तु आपके ऐसा कहने के अधिकार की रक्षा के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं । "उसके विचारों पर लॉक के दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

(3) **जियॉन जैक्यूस रूसो** (Jean-Jacques Rousseau) रूसों फ्रांस का एक मेधावी दार्शनिक था । फ़्रांसीसी क्रांति पर उसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । नेपोलियन महान् ने उसकी समाधि पर यह कहा था "यदि रूसों का जन्म न हुआ होता तो फ्रांसीसी क्रांति भी नहीं हुई होती ।" मान्तेस्क्यू तथा वाल्तेयर ने तो जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला, परन्तु रूसों ने उसके हृदय पर । रूसो भावना-प्रधान था । वह समाज का पुनर्निर्माण करना चाहता था । अतीत का रूसो पर कोई प्रभाव नहीं था । उसके विचार में अतीत के कारण ही मानवता संतप्त थी । उसने व्यक्तिगत जीवन में भी बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे । जीवन भर उसने रीतियों और अधिनियमों को मानने से इन्कार कर दिया । उसके विचार में "ईश्वर सब वस्तुओं अच्छी बनाता है, मानव उनमें हस्तक्षेप करता है, तो वे बुरी हो जाती है ।" यही रूसो के दर्शन का सार था ।

रूसो के विचार में "प्रकृति के राज्य में मानव में अधिक समता ओर समृद्धि थी । वह सुखी और खुश था ।" उसने मनुष्य को सरल जीवन व्यतीत करने के लिये प्रकृति के राज्य की ओर वापस जाने को कहा है । अपनी कृति "डिसकोर्स आन द ओरीजिन आफ इन्इक्वेलिटी" (Discourse on the origin of in equality) मैं उसने आधुनिक सभ्यता की असमानता, बेईमानी, धोखा तथा शोषण का विश्लेषण किया है और बताया है कि सभ्यता से ही घृणा, जलन, निर्धनता और निरंकुशता पैदा हुई है ।

रूसो ने प्रसिद्ध कृति "द सोशियल कॉन्ट्रेक्ट" (The Social Contract) में घोषणा की, कि मनुष्य मुक्त पैदा होता है । ये बेड़ियां नागरिक समाज द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों की है । इस प्रकार उसने सामान्य इच्छा की अवधारणा पेश की और बताया कि किसी राज्य की प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है । उसने राजा के दैवी अधिकारों का खंडन कर सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की स्थापना की । उसकी इस कृति में निरंकुश राजतंत्र पर भीषण प्रहारों के कारण इसे क्रांति की बाइबिल (Bible of Revolution) की संज्ञा दी गई है ।

रूसो आर्थिक विषमता का विरोधी था । वह कहता था कि "कोई मनुष्य इतना धनी नहीं होना चाहिए कि वह दूसरे को खरीद ले और कोई मनुष्य इतना निर्धन भी नहीं होना चाहिए कि वह अपने आप को बेच दे ।"

विचारक-

अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख विचारक निम्नलिखित है-

(1) दिदरो (Diderot)

वह अपने समय का सुप्रसिद्ध विद्वान था । वह अपनी लेखन कला तथा वाक् शक्ति के लिये बहुत प्रसिद्ध था । उसने राजा की निरंकुशता, सामन्तों के विशेषाआधिकार तथा चर्च की भ्रष्टता की कटु आलोचना की । उसने समस्त पुरातन संस्थाओं का विरोध किया । वह कहा करता था कि निरंकुश राजाओं और पादरियों ने संसार में सबसे अधिक कटुता उत्पन्न की है । दिदरो और कई अन्य लेखकों ने फ्रांस के विश्व कोष (Encyclopaedia) को 17 अंकों में

प्रकाशित किया । उसने अपने इस विश्वकोष में एकतंत्र-राजसत्ता, धार्मिक असहिष्णुता, दास-प्रथा, सामन्त पद्धति आदि विषयों पर विस्तार प्रकाश डाला । इसमें शासन की बुराइयों, चर्च की भ्रष्टता तथा हर क्षेत्र में व्याप्त असमानता पर बड़ी कुशलता से प्रकाश डाला गया । इसके अतिरिक्त उसने वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विषयों पर भी बड़ी चतुराई से लेख लिखे । इस विश्वकोष में दिदरो के अलावा प्रमुख योगदान करने वालों में- डी.एलीमबर्ट (D' Alembert) तुर्जो (Turgot), निकेर (Necker) मिराबो (Mirabeau), बाल्टेयर और मोन्टेस्क्यू शामिल थे । इस विश्वकोष द्वारा लोगों को सरल और सुगम रीति से सत्यज्ञान से अवगत कराया गया । दिदरो के इन कोषों ने समाज में तर्कवाद का खूब प्रचार किया । इस प्रकार दिदरो ने क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहित करने में यथेष्ठ योग दिया ।

(2) एडम स्मिथ व अन्य अर्थशास्त्री-

राष्ट्रीय राज्यों के उदय के साथ अर्थशास्त्र का अध्ययन महत्वपूर्ण हो गया और इस क्षेत्र में कई विख्यात विचारक हुए जिन्होंने अपनी विशिष्ट रचनाओं द्वारा आर्थिक क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी । मुक्त व्यापार (Laissez Faire) सम्बन्धी विचारधारा का उद्गम सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस व इंग्लैण्ड में प्रकाशित इस संदर्भ के ग्रंथों से अनुरेखित किया जा सकता है । इस विचारधारा के समर्थक भौतिकतंत्रवादी (Physiocrats) कहलाये । ब्रिटेन में "फिजियोक्रेटस" ने नेता एडमस्मिथ थे तथा फ्रांस में क्वेसने (Quesney) था ।

एडमस्मिथ ने वाणिज्य के क्षेत्र में मुक्त व्यापार (Laissey Faire) नीति को अपनाने पर जोर दिया ताकि जनसाधारण को उचित मूल्यों पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हों और उनका शोषण न हो । ज्ञानोदय के कारण इस नवीन आर्थिक विचार धारा का अभ्युदय हुआ जिसने व्यापार के क्षेत्र में जनहित में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया । एडमस्मिथ ने अपनी पुस्तक "दी वेल्थ ऑफ नेशन्स (The Wealth of Nations) 1776 ई. में प्रकाशित की । उसमें उन्होंने बताया कि मुद्रा सम्पति नहीं है और यह सिर्फ व्यापार का साधन है श्रम, सम्पति का सही स्रोत है जिसकी स्थिति में सुधार के लिये कल्याणकारी योजनाएं बननी चाहिए ।

क्वेसने (Quesney) फ्रांस में भौतिकतंत्रवादियों (Physiocrats) का नेता तथा फ्रांस के राजदरबार का राजवैद्य था । फ्रांस की क्रांति के दौरान कुछ बुद्धिजीवी लोगों का प्रादुर्भाव हुआ जो इस मत के प्रवर्त्तक थे कि राजा को व्यापार और उद्योग धंधों को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए । वे (Laissez Faire-Let nature takeits course) अर्थात् मुक्त व्यापार व उद्योगों के समर्थक थे । इस प्रकार के विचार वाले लोग भौतिकतंत्रवादी (Physiocrats) कहलाये । फ्रांस में इनका नेता क्वेसने (Quesney) था । उसने कृषि तथा व्यापार को संगठित करने पर जोर दिया । उसके मतानुसार कृषि तथा खानों पर तो कर लगना चाहिए परन्तु व्यापार पर कर नहीं होना चाहिए ।

लुई सोलहवें का अर्थसचिव तुर्जो (Turgot) भी इसी सिद्धान्त का बड़ा समर्थक था । आर्थिक क्षेत्र में राजकीय नियंत्रण से मुक्त सिद्धान्त का मध्यम वर्ग द्वारा खूब स्वागत किया गया ।

दर्शन के क्षेत्र में प्रबुद्ध काल (Age of Enlightenment) में अनेक चिंतक हुए जैसे रेने डेसकार्टेज (Rene Descartes)] बरूचस्पिनोजा (Baruch Spinoza)] जॉर्ज बकले (George Berkeley) डेविड ह्यूम (David Hume) कोंदोसे (Condorcet) आदि थे जिन्होंने वैचारिक क्रांति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

12.6 बौद्धिक जीवन के आयाम- विज्ञान, सामाजिक ज्ञान व शिक्षा विज्ञान

"प्रकृति" और "प्राकृतिक नियम" उस युग के प्रमुख शब्द बन गये जिसमें "तर्क और तर्काधार" पहले ही जुड़ चुके थे । प्रकृति के नियमों का पता लगाने के लिए तर्क पर आधारित अध्ययन की अपेक्षा की गई थी । इस प्रकार तर्क ही सभी प्रश्नों का उत्तर और सभी समस्याओं का समाधान था । रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान के विषयों में तेजी से विकास हुआ । स्वीडन के वनस्पति शास्त्री लिन्नेकस (Linnacus) ने पौधों और पशुओं के वर्गीकरण की एक आधारभूत पद्धति को सूत्रित किया । वनस्पति शास्त्री जान रे (John Ray) ने फलों और पत्तों के आधार पौधों का वर्गीकरण करने का, प्रयास किया । फ्रांस के प्रसिद्ध जीव-विज्ञानी जॉर्ज बूफन (John Buffon) ने (Natural History) नेच्युरल हिस्ट्री" नामक अपनी वृहद कृति को 44 खण्डों में प्रकाशित किया । जिसमें नरवानरगण और मानव के घनिष्ठ सम्बन्धों का उल्लेख किया गया । इसे चार्ल्स डारविन की विकासवादी सिद्धान्त का अग्रदूत माना जा सकता है । रसायनशास्त्र के क्षेत्र में आधारभूत रसायन प्रतिक्रियाओं का पता लगाया गया । विभिन्न गैसों के मिश्रण से उत्पन्न प्रभाव सम्बन्धी "कलोजिस्टन" (Phlogiston) अर्थात प्रदाहात्मक सिद्धान्त का आविष्कार हुआ । विभिन्न वैज्ञानिक विषयों में कई महत्वपूर्ण कृतियां प्रकाशित हुई, जैसे- "जनरल हिस्ट्री ऑफ द अर्थ General History of Insects), हिस्ट्री ऑफ द अर्थ (History of the Earth) ईपॉक्स ऑफ नेचर" (Epochs of Nature) वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रबुद्ध युग का प्रमुख सिद्धान्त बन गया था । तदनुरूप यूरोप में अनेक अनुसंधान इन अकादमियां स्थापित हुई । ऐकेडमी ऑफ ऐक्सपेरिमेंट (Academy of Experiment) फलोरेंस (Florence), द रॉयल सोसायटी फॉर इम्प्रूविंग नेच्युरल नॉलिज (The Royal Society of Improving Natural Knowledge) लन्दन (London), द एकैडमी ऑफ साइंस (The Academy of Science), पैरिस (Paris) और अमेरिकन फिलोसोफिक्ल सोसायटी (The American Philosophical Society) फिलाडेलफिआ (Philadelphia) ।

चिकित्सा के क्षेत्र में द्रुतगति से विकास हुआ । एडवर्ड जेनर ने चेचक (Small Pox) के टीके का आविष्कार किया । रोगों के निदान में "रक्त-प्रवाह, ऊतक विज्ञान (Histology) व सूक्ष्म परीक्षण इत्यादि का प्रचलन हुआ । शव-परीक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई ।

बेंजामिन फ्रेंकलिन ने 'विद्युत की छड़ (Rod) का आविष्कार किया जिससे तूफान व बिजली गिरने से कई भवनों को नष्ट होने से बचाया जा सका ।

सामाजिक विज्ञान

इतिहास, विधि और राजनीति की सदियों पुरानी अध्ययन पद्धति का स्थान भौतिक विज्ञान ने ले लिया । अर्थशास्त्र, सांख्यिकी और मनोविज्ञान जैसे नये- विषयों का विकास हुआ । जैसा कि सुप्रसिद्ध कवि पोप ने घोषणा की थी, "मनुष्य मात्र का समुचित अध्ययन मनुष्य है," पर्यवेक्षण और तथ्य पर आधारित इतिहास लिखे गए । इनमें महत्वपूर्ण पुस्तकें थी- जोन डी मैरिआना । (Juan de Mariana) की हिस्ट्री ऑफ स्पेन" (History of Spain) जिआन बोदिन (Jean Bodin) की "मैथड इन अरली अंडरस्टेंडिंग ऑफ हिस्ट्री (Method in Early Understanding of History) जिआन मोबिलिओन । (Jean Mobillon) की "डी री डिप्लोमोटिका" (De Re Diplomatica) बोस्यूट (Bossuet) की "डिस्कोर्स ऑन यूनिवर्सल हिस्ट्री" (Discourse of Universal History) विजरे बैकारिया (Ceasare Beccaria) की "ऑन क्राइम्स् एण्ड पनिशमेन्ट्स (On CrimesPunishments) और एडवर्ड गिब्बन (Edward Gibbon) की डिक्लाइन एंड फाल ऑफ द रोमन एम्पायर" (Decline and Fall of the Roman Empire) आदि । इस प्रकार बौद्धिक युग महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना का युग था । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अभिजात वर्ग के घरों में पुस्तकालय उतने ही अनिवार्य समझे जाते थे जितना कि डाइनिंग रूम या ड्राईग रूम ।

शिक्षा-

प्रबुद्ध काल में जनता का शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा । यूरोप में स्कूलों के साथ-साथ अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई । उस काल के प्रमुख विश्वविद्यालय गोटिंजन (Gottingen) और एफुत (Erfurt) (जर्मनी), डोरपेट (Dorpart) (स्वीडन), और अबू (Abo) (फिनलैंड) आदि थे । शिक्षा के उन्नयन में जॉन लॉक की "थाटस् ऑफ एजूकेशन" (Thoughts of Education) और रूसाके की "एमाईल (Emile) जैसी कृतियों ने महान् योगदान दिया । जर्मन साहित्य समालोचक जी. लेचिंग (Gotthold Lessing) की प्रसिद्ध कृति "ऑन द एज्युकेशन ऑफ द ह्यूमन रेस" (On the Education of the Human Race) में धर्म निरपेक्ष और तर्कनापरक (Secular and Rational) शिक्षा पर जोर दिया गया ताकि शिक्षा में मानवीयता का समावेश हो ।

12.7 बौद्धिक जीवन के आयाम-कला और साहित्य

कला और साहित्य-

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के जीवन में कलाओं में निखार आया ओर साहित्य की विभिन्न शाखाओं का पल्लवन व पुष्पन हुआ । कलाकारों व साहित्यकारों ने यूरोप के सांस्कृतिक जीवन को प्रकाशमय एवं उल्लासमय बना दिया । यह उस काल की मानवमेद्य की सफल अभिव्यक्ति थी ।

(अ) वास्तुकला-

अठारहवीं शताब्दी से पूर्व यूरोप में स्थापत्य के क्षेत्र में बारोक (बारोक) शैली (Baroque Style) का प्रचलन था यह शैली विशेष रूप से चर्च व राजकीय महलों के निर्माण में अपनाई गई । यह भाव विशिष्ट, अप्राकृतिक, ऊपरिकृत, भंवरदार । (चक्करदार) थी ।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही नवीन भवन निर्माण शैली "राकोको" (Rococo) का महाद्वीप में प्राबल्य रहा । "राकोको" शैली के भवन व इमारतें "बारोक" शैली के मुकाबल अधिक रोशनीयुक्त व हवादार थी । इस शैली के भवनों की दीवारों तथा छतों पर सफेद, सुनहरी व गुलाबी रंग किया जाता था । "राकोको" शैली में सजिवता, कोमलता और सुधड़पन था । इसलिए यह शैली "बारोक" से अधिक लालित्यपूर्ण थी । "रोकोकों शैली में सुव्यवस्थित शास्त्रीयवाद (Classicism) था । संक्षेप में यह शैली सांमजस्य संतुलन की प्रतीक थी ।

अल्प समानुपातिक, निरन्तर गति तथा सीधी कतारों व कोणों रहित आसान घुमावदार, खूब विसर्पण (Gliding) करते हल्के रंगों युक्त और कई मीनारों का प्रयोग करते, "राकोको" शैली के कई सुन्दर व भव्य भवनों का निर्माण हुआ जिनमें मेरी एन्टोनिटे का पेटिट ट्रियोन्न महल, फैड्रिक द्वितीय का पोस्टडम में बना सैंस सोसी महल, पैरिस की "Hotel de Soubise" बवेरिया की "The Jewel box- Viergehnheilingen Church", म्यूनिख का "Cuvillies theatre" मुख्य हैं ।

इंग्लैण्ड में जॉजियंन (Georgian Style) शैली का विकास सम्राट जॉर्ज प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय के समय हुआ । इस शैली की आत्मा कुलीनवर्गी थी । यह सर क्रिस्टोफर रेन (Sir Christopher Wren) के "बारोक शैली पर आधारित निर्माण शैली थी । यह आराम के स्थान पर विशुद्धता (परिष्कृतता) को अधिक मान्यता देती थी । इसकी तीन विशेषताएं थीं- शास्त्रीयतावाद, सुव्यवस्थित और लालित्य । रेन (Wren) ने "बारोक" शैली के "बारोक" तत्व लिए पर स्तम्भों व गुम्बदों में शास्त्रीयतावाद का अवलम्बन किया । सेंट पॉल केथेड्रल इसका उत्कृष्ट नमूना है ।

प्राचीन रोमन शैली की अभिव्यक्ति ब्रिटिश नवक्लासिक वास्तुकार रोबर्टएडम (Robert Adam) के निर्माण कार्यों में हुई ।

(ब) चित्रकला-

अठारहवीं सदी के पूर्व "बारोक" चित्र शैली का सारे महाद्वीप पर प्रभाव था । अठारहवीं शताब्दी में "राकोको" चित्रशैली का सारे यूरोप में उदय हुआ । इसमें शालीनता व लालित्य का अदभुत् सामंजस्य था । यह शैली 1715 ई. में लुई चौदहवें की मृत्यु के बाद फ्रांस के शान्त वातावरण में फली-फूली । फ्रांस में इस शैली के विशिष्ट चित्रकार थे- "एन्टोनी बालटयू" (Antoine Walteau), जियॉन फेगोनार्ड (Jean Fragonard) और फ्रेकुइस बोचर (Frangois Boucher) । इग्लैण्ड की चित्रकारी का महत्व जलीय रंगों और भू-चित्रकारी के क्षेत्र में घरानों के विकास में झलकता है । इस क्षेत्र में जोसुबा रेनपॅल्ड्स (Joshua Reyndds), (थाम्स गैंसबोरफ)- (Thomas Gainsborough) और जार्ज रोमनी (George Romney) प्रमुखकलाकार हुए । स्पेन की चित्रकला की प्रतिभा फ्रांसीसी गोया (Francis Goya) में झलकती है ।

(स) संगीत-

इस शताब्दी से पूर्व यूरोप में "बारोक" संगीत का प्रचलन था । इस क्षेत्र के महान् संगीतकारों ने संतुलित एवं मिश्रित संगीत रचनाओं को परिभाषित किया । इस समय विशुद्ध संगीत का प्रचलन हुआ जिसमें मर्मज्ञता एवं मिश्रितता थी । प्रबुद्धकाल के आदर्शो के अनुरूप स्वर लहरी में सुरीलापन, सुगमता, आनन्दविभोरता, स्पष्टता आई । संगीत कला में शास्त्रीयतावाद का विकास हुआ । बाच (Bach) और हैडंल (Handel) महान् जर्मन संगीतकार हुए जिनके गहरे भावों से ओत-प्रोत संगीत का लेखन एवं वाणी द्वारा मधुर गायन यूरोपीय क्षितिज पर छा गया । अठारहवीं शताब्दी में उनके उत्तराधिकारियों में आस्ट्रिया के हैडिन (Haydin) व मोजार्ट (Mozart) प्रमुख थे । उन्होंने शास्त्रीय संगीत शैली का प्रतिनिधित्व किया । उनके संगीत में सामंजस्य, स्पष्टता एवं संतुलन के सिद्धान्तों का समावेश था । इतना होने पर भी उनके संगीत में कुलीनवर्गी कुछ तत्व मौजूद थे । हैडिन का संगीत उपदेशात्मक था । मोजार्ट संगीत नाटक (OPera) का तात्कालीन उत्कृष्ट रचियता था । हैडिन को उठारहवीं शताब्दी का "सिम्फोनी (स्वर संगीत) का जनक (Father of Symphony) कहा जाता है । उसने कई सुरीली स्वर संगतियों का सृजन किया । इस प्रकार यूरोपीय वातावरण मधुर गीतों, तानों व वाद्यों की झंकार से संगीतमय हो गया ।

साहित्य-

साहित्य के क्षेत्र में ज्ञानोदय के कारण उत्कृष्ट कृतियों का सृजन हुआ । उनमें मौलिकता थी । लेखन में नवीन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ । वाल्तेयर को उसकी उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा के कारण यूरोप का "साहित्य सम्राट" माना लिया गया था । मोन्टेक्यू वाल्टेयर, रूसो और ब्यूमरचैस (Beaumarchais) ने "परशियन लैटर्स (Persain Letters) "कैंडिडे" (Candidate) एक उपन्यास "द न्यू हैलोपस (The New Heloise) और एक अन्य उपन्यास "द मैरिज ऑफ फिगारों (The Marriage of Figaro) जैसी क्रमश: विशिष्ट कृतियों की रचना की ।

अठारहवीं शताब्दी में "इंग्लैंड में गद्य का बोलबाला रहा । प्रमुख गद्यकारों में जॉन बुयान (John Bunyan) जॉनथम स्विफ्ट (Jonathan Swift) महान् उपन्यासकारों में सेमुऊल रिचर्डसन (Samuel Richard Son), हेनरी फिल्डिंग (Henry Fielding), जॉन ड्रायडम (John Dryden) और अलेग्जेडंर पोप (Alexander Pope) आदि शामिल थे । अलेग्जेडंर पोप की पुस्तक "एस्से ऑन मैन" (Essay on Man) में 18 वीं शताब्दी का तर्कवाद और आशावाद सार रूप में प्रस्तुत किया गया था । इस काल- में साहित्य की विशेषता यह थी कि इसमें रोमांस को नये रूप में प्रस्तुत किया गया जर्मनी में जोहॉन गोटिफ्राइड (Johann Gotifried) रोमांस और राष्ट्रवाद के सुत्रधार थे । फ्रेड्रिक चिल्लर (Friedrich Schiller) की कृतियां “द रोबर्स (The Robbers) और मैड ऑफ आरलियस" (Maid of Orleans) में रोमांस को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है ।

12.8 सारांश

अठारहवीं शताब्दी अर्थात् प्रबुद्धकाल (एज ऑफ एनलाइटन्मेन्ट) के उत्तरार्द्ध में मानवीय व्यवहार में तर्क की भूमिका को गति ओर निरन्तर प्राप्त हुई । सर ईसाइया (बर्लिन) की पुस्तक "दी एटीन्थ सैंन्चुरी" में कहा गया है कि यह संभवत: पश्चिमी यूरोप के इतिहास का अंतिम काल था जब कि मानवीय सर्वज्ञता को प्राप्त करना लक्ष्य समझा जाता था । अठारहवीं शताब्दी के प्रबुद्ध कालीन दर्शन ने वह मानवीय और सामाजिक आदर्श उपस्थित किया जो आज भी मानवता का आशा स्तम्भ है । मानव की स्वाधीनता और समानता के संगीत ने इस सदी में अभूतपूर्व मधुरता भर दी । धर्म का विशुद्ध रूप जनता के सामने आया । धार्मिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता की भावनाएं बलवती हो गई । धर्म की प्रवृत्ति जनकल्याणकारी कार्यों की ओर हुई । कला, साहित्य, विज्ञान और दर्शन के पल्लवन व पुष्पन ने यूरोपीय संस्कृति में निखार ला दिया । अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का धार्मिक और बौद्धिक जीवन संतुलित ओर प्रगतिमुख बन गया ।

12.9 बोध प्रश्न:-

1. अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन में पुनर्जागरण का धर्म सुधार की क्या पृष्ठ भूमि थी?
2. "प्रबध -काल" (Age of Enlightenment) से आपका क्या अभिप्राय है?
3. अठारहवीं शताब्दी के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिये ।
4. अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के प्रमुख दार्शनिकों के योगदान का विवेचन
5. कीजिए ।
6. अठारहवीं सदी से यूरोप में कला की प्रगति का उल्लेख कीजिए ।
7. अठारहवीं सदी के यूरोप में साहित्य के उन्नयन का निरूपण कीजिए ।

12.10 संदर्भ पुस्तकें:-

1. Edward Mc Nall Burns, Robert E. Lerner and Standish Meacham: 'Western Civilizations'
2. Leo Gershoy: "The French Revolution and Napoleon"
3. J.E. Swain: History of World Civilization.
4. Edward Gibbon: 'The Decline and Fall of the Roman Empire'
5. Norman Hampson: 'The Enlightenment'
6. Carlton J.H. Hayes: 'A Political and Cultural History of Mordern Europe' Vol.1

इकाई-13
औद्योगिक क्रान्ति

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ होने के कारण

13.3 औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भिक दौर (1760-1830)

13.4 औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर

13.5 औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

13.6 महत्व

13.7 औद्योगिक क्रान्ति का यूरोप में मन्द गति से प्रसार

13.8 सारांश

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य:

(i) औद्योगिक क्रांति की प्रेरक्ष शक्तियों को समझना ।

(ii) औद्योगिक कांति के विभिन्न चरणों की विशेषताओं एवं उपलब्धियों का विश्लेषण करना ।

(iii) औद्योगिक क्रांति के परिणामों एवं महत्व की विवेचना करना तथा

(iv) यूरोप के देशों में औद्योगिक क्रांति के प्रसार को समझना ।

13.1 प्रस्तावना:

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटेन में औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का कम आरम्भ हुआ । इससे औद्योगिक क्षेत्र में अनेक नये द्वारा खुले, नयी-नयी तकनीकों का विकास होता गया, अनेक प्रकार की मशीनों के निर्माण का क्रम ब्रिटेन में चल निकला और समय के साथ-साथ उत्पादन की गति इतनी अधिक तेज हो गयी कि इन परिवर्तनों को औद्योगिक क्रान्ति कहा गया । 1760 से 1830 तक ब्रिटेन में औद्योगिक परिवर्तनों का पहला दौर आया और 1830 से 1870 तक इसका दूसरा दौर चलता रहा । इस प्रकार प्राय: एक शताब्दी में ब्रिटेन में उद्योग के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन हुए । इनसे इस देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का समूचा स्वरूप ही बदल गया । वैसे तो क्रान्ति शब्द का उपयोग अचानक आये परिवर्तनों के लिये ही किया जाता है । लेकिन औद्योगिक क्रान्ति का सिलसिला ब्रिटेन में लम्बे समय तक चलता रहा, ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति अचानक शुरू न होकर लम्बे समय तक चलने वाली प्रकिया थी । इसी कारण ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति को अन्य क्रान्तियाँ से भिन्न माना जा सकता है । सबसे पहले तो यह

आकस्मिक न होकर लम्बे समय तक चलने वाला दौर था । यह खूनी न होकर शान्तिपूर्ण थी और इसने किसी उथल पुथल को जन्म देने के स्थान पर बदलाव के ऐसे कम को जन्म दिया जो समाज- में स्वत: होते गये ।

औद्योगिक उत्पादन लाने के क्रम में ब्रिटेन में किये गये उपाय इतने अधिक व्यापक थे, इतने नये प्रकार के थे और इतने विलक्षण थे कि इन्हें औद्योगिक क्रान्ति कह कर पुकारा गया । इससे इन परिवर्तनों के महत्व को स्वीकारा गया । यह भी स्मरण रखना होगा कि इन युगान्तकारी परिवर्तनों का महत्व केवल एक देश अथवा एक महाद्वीप तक सीमित न रहा । इस औद्योगिक क्रान्ति का सबसे उल्लेखनीय पक्ष यह था कि धीरे-धीरे समूचे यूरोप और फिर पुरे विश्व में औद्योगिक उत्पादन का नया दौर चल पड़ा । इस प्रकार ब्रिटेन में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति विश्व इतिहास और मानव जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई । इसके परिणामों की दृष्टि से भी ब्रिटेन में सहसा आये औद्योगिक परिवर्तनों को औद्योगिक क्रान्ति कहना सर्वथा उचित है ।

यहां विचार करना होगा कि औद्योगिक क्रान्ति ब्रिटेन में क्यों हुई? उन सहायक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जिनके फलस्वरूप ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का दौर शुरू हुआ ।

13.2 ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ होने के कारण:

ब्रिटेन की तत्कालीन आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ औद्योगिक क्रान्ति में सहायक सिद्ध हुई । इस देश में सबसे पहले और सफलतापूर्वक औद्योगिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के कुछ विशेष कारण अवश्य थे । ब्रिटेन में सहायक परिस्थितियां इस प्रकार थीं:-

कृषिक प्रगति का प्रभाव:

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति लाने में कृषि ने विशेष भूमिका अदा की । इस क्रान्ति के पूर्व यहां कृषि में प्रगति हुई थी, बड़े-बड़े फार्म स्थापित किये गये थे और धनवान भूमिपतियों ने खेती में पर्याप्त पूंजी लगायी थी । परिणामत: खेती से इन जमींदारों को लाभ मिला । उनके पास काफी पूंजी इकट्ठा हो गयी । भूमि से लाभ उठाने वालों की संख्या में हुई बढ़ोत्तरी तब विशेष रूप से उपयोगी साबित हुई जब औद्योगिक प्रगति लाने में पूंजी लगाने वालों को अवसर मिले । कृषि से अर्जित पूंजी का प्रयोग औद्योगिक क्रान्ति लाने में ब्रिटेन में किया गया ।

सस्ते मजदूरों की उपलब्धता:

खेती में बड़े जमींदारों द्वारा विशाल फार्म स्थापित करने से छोटे किसान खेती से जीविका उपार्जन करने की स्थिति में नहीं रह गये । इनमें से अनेक किसानों के पास कोई काम न रह गया । अत: ये किसान शहरों की ओर बढ़े, उन नये-नये औद्योगिक केन्द्रों तक पहुंचे जहां मजदूरों की आवश्यकता थी और इनकी मजबूरी का लाभ उठाकर उन्हें कम से कम वेतन देने का सिलसिला चल पड़ा । इन मजदूरों की विशाल संख्या से औद्योगिक प्रगति गतिशील हुई ।

विदेश व्यापार पर जोर:

अठारहवीं सदी तक ब्रिटेन की नौसनो विश्व की सबसे शक्तिशाली नौसेना बन चुकी थी । समुद्र में उसकी श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी । इस कारण ब्रिटेन ने जलयानों द्वारा दूर से दूर के देशों तक पहुंचने का और विश्व के अधिक से अधिक देशों के साथ व्यापार करने का प्रयास किया । इसमें उसे सफलता भी मिली । उसने अनेक देशों पर राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया । विदेश व्यापार की व्यापक संभावनाओं को देखते हुए ब्रिटेन में उत्पादनों की मांग बढ़ी । अधिक से अधिक माल के तथा अच्छे से अच्छे माल के उत्पादन की चारों तरफ से मांग होने लगी । इसी स्थिति से प्रोत्साहित होकर औद्योगिक क्रान्ति हुई ।

प्राकृतिक साधन:

औद्योगिक विकास में प्राकृतिक साधनों की आवश्यकता होती है । इस दृष्टि से ब्रिटेन भाग्यशाली था । यहां लोहा और कोयला के विशाल भंडार थे, और ये खदानें एक दूसरे के निकट भी थीं । इस खनिज सम्पदा की व्यापक उपलब्धता से ब्रिटेन में औद्योगिक विकास की संभावनाएं बढ़ी । हर तरह के उद्योगों की स्थापना में इन प्राकृतिक साधनों ने रीढ़ की हड्डी का काम किया ।

व्यापारिक बैंकों की भूमिका:

सत्रहवीं सदी से ही ब्रिटेन में बैंक स्थापित हो गये थे । ये बैंक हर स्थिति का सामना करने के लिये कर्ज देते थे । युद्ध के समय ये बैंक सरकार को कर्ज देते थे और शान्ति के समय इन बैंकों ने उद्योगों की स्थापना की दृष्टि से कम से कम व्याज की दर से कर्ज उपलब्ध कराये । ब्रिटेन के बैंकों ने इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति लाने में प्रभावकारी भूमिका अदा की । बैंको ने जो पूंजी उपलब्ध करायी उसका उपयोग करके ब्रिटेन के उद्योगों की पैर जमाने का अवसर मिला ।

अनुकूल राजनीतिक स्थिति:

ब्रिटेन के राजनीतिक वातावरण ने भी औद्योगिक क्रान्ति लाने में मदद की । सबसे पहले तो ब्रिटेन में किसी प्रकार की राजनीतिक उथल पुथल के बजाय राजनीतिक स्थायित्व था । राजनीतिक शान्ति, स्वतंत्र समाज, संसदीय प्रजातंत्र और जनता को प्राप्त राजनीतिक अधिकारों ने एक ऐसा अनुकूल माहौल उत्पन्न कर दिया जिसमें आर्थिक प्रगति की संभावनाएं बढ़ी । ब्रिटेन के पूंजीपति अपने को सुरक्षित अनुभव करते थे और उद्योगों में धन लगाने में उन्हें किसी प्रकार की असुरक्षा नहीं दिखायी दी ।

13.3 औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भिक दौर (1760-1830)

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटेन में तीव्र गति से औद्योगिक रूपान्तरण हुआ, उत्पादन में व्यापक वृद्धि हुई ओर विभिन्न उद्योगों के उत्पादन के ऐसे नये तरीके अपनाये गये जो इसके पहले दुनिया में कहीं भी नहीं अपनाये गये थे । मशीनीकरण तथा भाप की शक्ति का उपयोग इस औद्योगिक क्रान्ति के आधार स्तम्भ थे । उदाहरणार्थ शताब्दियों से ब्रिटेन में वस्त्र उद्योग था । लेकिन वस्त्रों के उत्पादन में मानव शक्ति का प्रयोग होता था । ये उद्योग छोटे पैमाने पर घरों में प्रचलित थे और घरेलू उद्योग के रूप में जो कुछ वस्त्र बना लिया जाता था उसे निकट के बाजारों में बेच दिया जाता था । औद्योगिक क्रान्ति के शुरू होते ही यह

परम्परागत तरीका मशीनरीकरण के साथ बदला । नई-नई तरह की मशीनों के निर्माण और इनके उपयोग से उत्पादन के तरीके बदले ।

ऊन और सूत की कताई और बुनाई कीं अनेक नयी मशीनों के आविष्कार होने से उत्पादन तेजी से बढ़ा । वस्त्र के उत्पादन की दो प्रकियाएं थीं । पहली प्रकिया थी कच्चे माल को कात कर धागा बनाना और दूसरी थी इन धागों को बुनकर ऊनी अथवा सूती कपड़ा बनाना । इस अवधि में ब्रिटेन में कातने और बुनने की मशीनें बनीं और धीरे-धीरे और भी अच्छी मशीनों का निर्माण हुआ । 1733 में जान के की फ्लाई शटल बनाई गयी । यह मशीन अधिक तेजी से बुनाई कर सकती थी । इससे कातने की मशीन की जरूरत पड़ी । 1767 में जेम्स हारग्रीव्स की स्पिनंग जैनी का आविष्कार हुआ । अभी तक परंपरागत प्रणाली से एक तकली पर एक धागा बनता था । अब आठ तकलियां एक साथ काम कर सकती थीं । 1760 में रिचर्ड आर्कराइट की स्पिनिंग फेम मशीन से और भी परिवर्तन के द्वार खुले । इससे कताई की चौखट बनाने का क्रम शुरू हुआ । यह मशीन धागा भी बनाती थी और घूमती हुई तकलियों की मदद से इन धागों को घुमा सकती थी । इस मशीन की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि हाथ या पैर की शक्ति के स्थान पर यह जलशक्ति की मदद से चलती थी । ये मशीनें अच्छा तथा मजबूत धागा बनाने लगीं । इसी के साथ 1785 में एडमन्ड कार्टराइट ने पावरलूम का आविष्कार किया । एक ऐसे करघे का आविष्कार हुआ जो पहले जल शक्ति तथा बाद में भाप की शक्ति से चलने लगा । अब तक बुनाई की प्रक्रिया पहले की तुलना में अधिक तेज हो गयी । अच्छे धागे की मदद से ज्यादा कपड़े का उत्पादन शुरू हुआ ।

औद्योगिक क्रान्ति के इसी दौर में दो स्थिति-विकासों की चर्चा की जा सकती है । इनमें से मशीनों को चलाने में भाप की शक्ति का आविष्कार सबसे अधिक उल्लेखनीय विकास था । भाप की ताकत की जानकारी और इसका उपयोग औद्योगिक क्रान्ति का आधार था । दूसरा स्थिति-विकास था नई मशीनों के निर्माण में धातु का प्रयोग ।

युगों से किसी भी प्रकार की मशीन को हाथों की ताकत से अधिक बल से चलाने का विचार मानव मस्तिष्क में था । वायु, जल या जानवर की शक्ति का उपयोग करने की समस्या का समाधान नहीं हुआ था । अन्ततः 1782 में तब चमत्कार हुआ जब जेम्स वाट ने भाप की शक्ति का उपयोग करते हुए तेजगति से घूमने वाला एक भाप का इंजन का आविष्कार किया । यह एक नये युग का आरम्भ था क्योंकि वस्त्र उद्योग के अलावा अनेक अन्य उद्योगों में भाप की शक्ति का उपयोग जैसे जैसे बढ़ता गया उसी अनुपात में औद्योगिक क्रान्ति तेज होती गयी । तरह तरह की मशीनों को भाप की शक्ति से चलाने का सिलसिला चल निकला ।

भाप की शक्ति के जानकारी तथा लोहे और कोयले का प्रयोग औद्योगिक क्रान्ति के आधार स्तम्भ बने । लकड़ी की मशीनें भाप की शक्ति का दबाव सहवन नहीं कर सकती थी । लोहें की मशीनों के बनाने से क्रान्ति युग का आरम्भ हुआ । अठारहवीं शताब्दी तक निम्न श्रेणी का लोहा उपलब्ध था और इसे गरम करने में टनों लकड़ी का प्रयोग होता था । औद्योगिक क्रान्ति के पहले चरण में लोहे को पिघलाने में कोयले का उपयोग करने की प्रक्रिया शुरू हो गयी । अच्छी और शुद्ध लोहा तैयार करने की नयी विधियां छू निकाली गयीं । परिणामतः लोहा और

इस्पात का उत्पादन बढ़ा और इस धातु की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए इसकी गुणवत्ता को सुधारने के नये से नये आविष्कार हुए ।

लोहे की आवश्यकता ने कोयले के निकालने की विधियां खोज निकालने की जरूरत को महत्वपूर्ण बना दिया । ब्रिटेन में कोयला प्रचुर मात्रा में था । लेकिन खदानों से इसे निकालना कठिन काम था क्योंकि खदानों में पानी भरा रहता था और पानी को हटाने की विकट समस्या थी । औद्योगिक क्रान्ति के दौरान इसका समाधान ढूंढ निकाला गया । नये भाप की शक्ति सें चलन वाले पम्पों की मदद से कोयले की खादनों से पानी हटाने की समस्या पर काबू पा लिया गया । धीरे-धीरे आविष्कारों ने अच्छे भाप की शक्ति से चलने वाले पम्पों के निर्माण में सफलता प्राप्त कर ली ।

व्यापक पैमाने पर उत्पादन तभी संभव हो सका जब दो और आवश्यकताओं की पूर्ति हो गयी 1 इनमें से पहली आवश्यकता थी कच्चे माल को उन स्थानों तक पहुंचाना जहां कारखाने लगाये गये थे और दूसरे उत्पादित माल को बाजारों तक पहुंचाना । तेजी से औद्योगिक विकास करने के लिये यातायात के साधनों में सुधार जरूरी था । इस दृष्टि से ब्रिटेन में अनेक कदम उठाए गये । इनमें से पहला था पक्की सड़कों का कोलतार और मिट्टी की मदद से निर्माण । एक अन्य तरीका था जल मार्ग । ब्रिटेन में नहरों और नदियां का जाल बिछा हुआ था जिस पर भाप की ताकत से चलने वाली नौकाओं द्वारा वस्तुओं को लाया और ले जाया गया । शीघ्र ही समुद्र पर भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों का जब निर्माण 1838 में शुरू हो गया तो यातायात के क्षेत्र में सचमुच क्रान्ति आ गयी । अब समुद्र के द्वारा ब्रिटेन को व्यापार करने के असीमित द्वार खुले और वे उत्पादित माल को देश के बाजारों के साथ-साथ विश्व के बाजारों में बेच सकता था और ऐसा करने की महत्वाकांक्षी योजनाएं ब्रिटेन में बनने भी लगीं ।

यातायात के क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय स्थिति का विकास हुआ रेलवे के भाप इंजन का आविष्कार । रेल इंजन का विकास धीरे-धीरे हुआ । पहले खदानों में छोटी-छोटी मोटरें चलीं । 1814 में जार्ज स्टीफैन्सन ने भाप से चलने वाले रेल इंजन का सफलता पूर्वक निर्माण कर दिया । उसने इसको कुछ समय में और विकसित कर दिया । विशेष रूप से उल्लेखनीय घटना 1830 तक घटी जब मेनचेस्टर से लिवरपूल शहरों के बीच तीस मील प्रतिघंटा से रेलगाड़ी चली । इसके पश्चात तो रेल इंजन और डिब्बों के निर्माण में तरक्की होती गयी और सामान तथा मनुष्यों को लाने ले जाने में क्रान्ति स्पष्टत: दिखायी दी । यातायात के साधनों में इस विकास से औद्योगिक क्रान्ति के और कारगर होने के आधार स्पष्टत: दिखायी दिये । रेल यात्रा सस्ती थी, सुलभ थी और धीरे-धीरे समूचे देश में रेल का जाल फैल गया जिससे उत्पादित वस्तुओं और कच्चे माल को ले जाने में ऐसे परिवर्तन हुए जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी ।

उत्पादन के कुछ आकड़ों से परिवर्तन की गति और इसके स्वरूप का अनुमान लगाया, जा सकता है । कपास की खपत 1760 में आठ हजार टन थी जो बढ़कर 1830 में सौ हजार टन हो गयी । लोहे का उत्पादन 1800 में 250 हजार टन था जो 1835 में बढ़कर एक मिलियन टन हो गया । कोयले का उत्पादन 1770 में छह मिलियन टन था जो 1830 में बढ़कर 23 मिलियन टन हो गया । औद्योगिक क्रान्ति के पहले चरण में हुई आर्थिक प्रगति का आकलन इन आकड़ों से किया जा सकता है ।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन प्रणाली में मूलभूत अन्तर यह पाया कि घरेलू उद्योग धन्धों के स्थान पर कारखानों की स्थापना हुई । कारखाने उत्पादन के केन्द्र बने । औद्योगिक क्रान्ति शुरू होने के पहले कताई, बुनाई तथा अन्य औद्योगिक उत्पादन अधिकतर घरों में ही होता था अथवा दुकानों में होता था जहां परिवारजन, स्त्री, पुरूष और बच्चे सभी इस काम में हाथ बटाते थे । परिवार का मुखिया औजार इकट्ठा करने के साथ-साथ कच्चा माल लाने और उत्पादित माल को बेचने का कार्य भी करता था । इस प्रकार उत्पादन की प्रणाली वास्तविक रूप से घरेलू थी । औद्योगिक क्रान्ति के बाद यह व्यवस्था बदल गयी । अब श्रमिक घर छोडकर कारखानों में एकत्र होते थे । अनेक कारखाने बनते गये । ये श्रमिक निश्चित वेतन पाते थे और उत्पादन के बाकी कार्यों से इनको कोई मतलब नहीं होता था । नये कारखाने धीरे-धीरे और भी विशाल औद्योगिक केन्द्र बनते गये और इनमें अनेक प्रकार की मशीनें लगने लगीं । फैक्टरी लगाने में काफी धन लगने लगा । श्रमिकों द्वारा धनवान लोगों को एक प्रकार से श्रम बेचने की पद्धति का आरम्भ हुआ । कारखानों की स्थापना से उद्योगों में अनेक प्रकार की नयी समस्याएं जन्मीं ।

13.4 औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर

1830 से 1850 तक औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर चला । इस दौरान पहले दौर की औद्योगिक प्रगति का तेजी से विकास हुआ, अनेक उद्योगों का विस्तार हुआ और यातायात के साधनों के विस्तार से देश का नक्शा ही बदल गया । इस दौरान औद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियां स्पष्टत: प्रकट हुई । ब्रिटेन में लगातार हुए औद्योगिक विकास के तीन कारण दिये जा सकते हैं । ये थे औद्योगिक पूंजी का विकास, इंजीनियरिंग वर्गों की संख्या में तेजी से वृद्धि और वैज्ञानिक आविष्कार ।

सूती वस्त्र उद्योग का व्यापार ब्रिटेन का पहला सफल उद्योग था । इसकी व्यापक सफलता के फलस्वरूप उन लोगों के पास विशाल पूंजी इकट्ठा हो गयी जिन्होंने इनमें धन लगाया था । जब इन उद्योगपतियों को एक उद्योग में आशा से अधिक लाभ मिला तो इन्होंने अन्य उद्योगों में धन लगाया । इस प्रकार उद्योगों में प्रगति बढ़ती गयी । इसी अवधि में ब्रिटेन में लिमिटेड कम्पनियां बनी और दूसरे कारपोरेशन स्थापित हुए । इन व्यापारिक संस्थानों में ऐसी- प्रक्रिया शुरू की गयी जिसमें हजारों लोग अपना संचित धन लगाकर औद्योगिक उत्पादन के लाभ के भागीदार बने । विशाल पूंजी एकत्र करने की दृष्टि से यह एक निराला तरीका अपनाया गया ।

इंजीनियरिंग और तकनीकी ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के योगदान से भी औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा दौर गतिशील रहा । खदान; वस्त्र उद्योग, बिजली, सड़क, रेलवे आदि विभिन्न प्रकार के उद्योगों में वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान रखने वालों की निर्णायक भूमिका तरह-तरह से आविष्कारों में तो थी ही लेकिन मशीनों के रख-रखाव और ठीक प्रकार से उनके संचालन में भी नये वर्गों ने प्रभावी भूमिका निभायी ।

औद्योगिक क्रान्ति के इस दूसरे दौर में रेलवे के असाधारण विकास ने समूची यातायात व्यवस्था का स्वरूप ही बदल दिया । 1830 तक रेलवे का दौर शुरू ही हुआ था और केवल पांच

सौ मील की धीमी गति की रेलों पर यात्री सफर करते थे । ये रेलें सामान को लाने-ले जाने का साधन नहीं बनी थी । यात्रियों के आवागमन का रेल प्रमुख साधन नहीं बनी थी । आगामी दस वर्षों बाद रेल का विस्तार पांच हजार मील तक कर दिया गया । यात्रियों के आवागमन का रेल प्रमुख साधन बन गयी । इसकी गति और दासता में विस्तार किया गया । शीघ्र ही भारी सामान भी रेलमार्ग से जाने लगा ।

1830 के पश्चात के बीस वर्षों में हर क्षेत्र में उत्पादन बढ़ा । वस्त्र उद्योग में भाप की शक्ति का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया । पहले सूती धागा कातने में भाप की शक्ति का प्रयोग लिया जाता था और इसके बाद बुनाई, में भी भाप की शक्ति का प्रयोग बढ़ा । भाप से चलने वाले करघों की संख्या 1830 में साठ हजार थी जो 1850 में दो सौ पचास हजार हो गयी । इसी प्रकार से हाथ से चलने वाले करघों की संख्या लगातार घटती गयी । 2,25,000 हाथ से चलने वाले करघे इसी अवधि में घटकर पचास हजार रह गये । ऊनी और सिल्क वस्त्रों के उत्पादन से जुड़े सभी कार्यों में मशीनों का उपयोग बढ़ा । इन नये साधनों के परिणामस्वरूप कच्ची कपास का उपयोग एक लाख टन से बढ़कर तीन लाख टन हो गया । विदेशों से आयातित ऊन भी तीन गुना अधिक आने लगी । कच्चे माल के खपत के ये आंकड़े बताते हे कि सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों का उत्पादन तेजी से बढ़ा ।

इस अवधि में लोहे के उत्पादन में विशेष प्रगति हुई । 1830 में लोहे का उत्पादन सात लाख टन था जो बढ़कर बीस वर्षों बाद बीस लाख टन हो गया । इस समय लोहे के उत्पादन में तकनीकी दृष्टि से दो नये उपाय किये गये । गर्म हवा भट्टी का प्रयोग इनमें से पहला उपाय था । इसके पश्चात लोहे के उत्पादन को बढाने में वाष्पीय हथोड़ा प्रयोग में आया । नयी तकनीकों का प्रयोग करके अधिक से अधिक लोहे का उत्पादन बढ़ाया गया । प्राय: इसी गति से कोयले का उत्पादन भी बढ़ा । 1830 से 1850 के बीच कोयले की खपत 23 मिलियन टन से बढ़कर 65 मिलियन टन हो गयी । रेलवे तथा उद्योगों के विकास के साथ-साथ लोहे और कोयले की मांग बढ़ती गयी और इस बढ़ती हुई मांग को पूरा करते हुए ही इनका अधिक उत्पादन किया गया ।

कुछ अन्य क्षेत्रों में भी औद्योगिक प्रगति दिखायी दी । अब लोहे के सामुद्रिक जहाजों का निर्माण शुरू हुआ और सामुद्रिक जहाजों में वाष्प की शक्ति का प्रयोग होने लगा । इस प्रकार के सामुद्रिक जहाज पहले से तेज गति से चलने लगे और इनको कम खतरों का सामना करना पड़ा । देश-विदेश तक वस्तुओं की आयात निर्यात में इन सामुद्रिक जहाजों का व्यापक प्रयोग शुरू हुआ । 1831 में बिजली इंजीनियरिंग का जन्म हुआ कुछ वर्षों में ही ब्रिटेन में बिजली के तार के खम्भें लगाये गये और सम्पर्क सूत्र स्थापित करने का नया साधन मिला इससे रेलवे के विकास में तथा व्यापार में सहायता मिली ।

13.5 औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

औद्योगिक क्रान्ति के लम्बे विकास क्रम द्वारा ब्रिटेन में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन आए, यहां के निवासियों के रहन सहन का तरीका बदल गया तथा राजनीति भी

प्रभावित हुई । एक प्रकार से देश का पूरा स्वरूप ही. बदल गया । यह उचित होगा कि इन परिवर्तनों का आकलन किया जाये ।

उत्पादन में असाधारण वृद्धि

ब्रिटेन में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में असाधारण वृद्धि से यहां के निवासियों का आर्थिक जीवन बदल गया । नित्यप्रति प्रयोग में आने वाली वस्तुएं बहुतायत में उपलब्ध होने लगी । इसके पूर्व कभी भी सूती वस्त्र, गलीचे तथा घर में उपयोग में आने वाली छोटी और बड़ी वस्तुएं न तो इतनी बड़ी संख्या में बाजार में उपलब्ध रहती थी और न कोई इसकी कल्पना कर सकता था । अत: वस्तुओं की उपलब्धता से उनकी बिक्री बढ़ी । लोगों का स्वभाव भी इस स्थिति से बदला और वे अलग-अलग प्रकार की वस्तुओं को खरीदने और इन्हें घर में रखने के इच्छुक दिखायी दिये । यह भी ध्यान देने योग्य है कि नित्य प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के दाम भी घट गये क्योंकि मशीनों के प्रयोग होने से इनका उत्पादन बड़ी संख्या में किया जा सकता था । वस्तुओं के उत्पादन से देश धनवान हुआ । इसका एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा । 1760 में सूती वस्त्रों के उत्पादन की कीमत एक लाख पौंड थी जो बढ़कर 1910 में छह सौ लाख पौंड हो गयी । उत्पादन में हुई इस चमत्कारिक वृद्धि से देश में पूंजी आयी, लोग धनवान हुए और चारों ओर खुशहाली दिखायी दी ।

शहरीकरण

नये-नये शहरों की स्थापना, शहरों का लगातार विकास और गांवों से लोगों का शहरों की ओर पलायन औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख देन थे । ये नये शहर अधिकतर उन औद्योगिक केन्द्रों से विकसित हुए जिनकी स्थापना लोहे और कोयले की व्यापक उपलब्धता वाले स्थानों के निकट की गयी थी । इस प्रकार के समीकरण से प्रकट है कि अधिकतर ब्रिटेन के नगर औद्योगिक नगर थे । जैसे-जैसे समय के साथ-साथ उत्पादन बढ़ा, नये-नये उद्योग स्थापित हुए उसी अनुपात में नगरों की संख्या और आकार में वृद्धि हुई । औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात में भारी परिवर्तन आया । ब्रिटेन में पहले अधिकतर लोग गांवों में रहते थे । उन्नीसवीं सदी से यह स्थिति बदल गयी । अब अधिकतर लोग हशहरों में रहने लगे । शहरों के तेजी से होने वाले विकास में नये प्रश्नों को जन्म दिया क्योंकि आवास, खान-पान, बीमारी, गन्दगी आदि अनेकों समस्याओं का समाधान करना आवश्यक हो गया । उन्नीसवीं सदी में इन शहरों का विकास किसी प्रकार की योजना से नहीं हुआ था । अत: मनमाने तरीकों से शहर बढ़ते गये । बाद में शहरीकरण से उपजे प्रश्नों पर ध्यान दिया गया ।

मुक्त व्यापार

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ होने तक निर्यात और आयात करने के लिये ब्रिटेन में तरह-तरह के बन्धन लगे हुए थे । संरक्षणवाद की नीति अपनाते हुए अनेक ऐसे कानून बने थे जो व्यापार करने में बाधा उपस्थित करते थे । औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप संरक्षणवाद के स्थान पर मुक्त व्यापार की नीति अपनायी गयी और व्यापार करने पर लगाये गये अंकुश हटा दिये गये । इस निर्णय का मुख्य कारण यह था कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ब्रिटिश उद्योग और व्यापार का संरक्षण करने की जरूरत नहीं रह गयी । फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात

ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा भी शक्तिशाली हो चुका था किसी अन्य देश के सामान से ब्रिटेन के माल की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं रह गयी । परिणामतः: अर्थशास्त्री एडम स्मिथ और उसके सहयोगियों ने मुक्त व्यापार के पक्ष में आवाज उठायी । उन्नीसवीं सदी के मध्य से मुक्त व्यापार करने का निर्णय ब्रिटिश सरकार ने किया ।

बैंक और मुद्रा

औद्योगिक क्रान्ति के दौरान बैंकों ने प्रमुख भूमिका अदा करते हुए विभिन्न उद्योगों को पूंजी उपलब्ध करायी । इस प्रकार तरह-तरह के उद्योगों की स्थापना में पूंजी को उपलब्ध कराने में ब्रिटेन के बैंकों ने प्रमुख कार्य किया । स्वाभाविक रूप से औद्योगिक परिवर्तन के साथ-साथ बैंको के महत्व को स्वीकारा गया । इसी समय यह भी अनुभव किया गया कि तरह तरह के लेन दने में भी बैंक प्रमुख भूमिका अदा कर सकते थे । उद्योगों में लगने वाली पूंजी, रेलवे, देश और विदेश में व्यापार इतनी तेजी से बढ़ा कि बैंकों को लेन देन का महत्वपूर्ण कार्य भी करना पड़ा । बैंकों की साख जरूरी साबित हुई और धीरे-धीरे लेन-देन चेक के माध्यम से होने लगा । मुद्रा के प्रचलन के स्थान पर भुगतान जब चेक से होने लगा तो उद्योग और व्यापार को सुविधा हुई । बैंक आफ इग्लैंड ने इस दृष्टि से निर्णायक कार्य किया । समय के साथ-साथ आधुनिक बैंकिग व्यवस्था का जन्म हुआ ।

विश्वव्यापी स्तर पर बाजारों की खोज

औद्योगिक क्रान्ति के कारण ब्रिटेन में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक होने लगा कि केवल स्वदेश में अथवा यूरोप में इसकी खपत न हो सकी । इन वस्तुओं को एशिया, अफ्रीका तथा विश्व के अन्य देशों में बेचने की भावना बलवती हुई । ब्रिटेन के उद्योगपति और व्यापारी विश्व के अनेकानेक देशों से कच्चा माल मंगाने लगे तथा ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं को इन देशों को बेचने लगे । इस व्यापार से उन्हें दोहरा लाभ मिला । एक ओर ब्रिटिश व्यापारियों ने कपास, पटसन आदि कच्चा माल कम से कम कीमत में खरीदा और दूसरे इन्हीं को उत्पादित वस्तुओं में बदल कर एशिया और अफ्रीका के बाजारों में बेचा । धीरे-धीरे आर्थिक उद्देश्यों ने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म दिया और ब्रिटेन ने भारत सहित अनेक देशों पर साम्राज्यवादी शासन स्थापित कर लिया । औपनिवेशिक शासन स्थापित करने का एकमात्र उद्देश्य अधिक धन कमाना था । जब ब्रिटेन का उपनिवेशों में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया तो फिर ब्रिटिश वस्तुओं की बिक्री के लिये कोई बन्धन नहीं रह गये । औद्योगिक क्रान्ति ने साम्राज्यवादी विस्तार को जन्म दिया और साम्राज्यवादी विस्तार से औद्योगिक क्रान्ति को लगातार पनपने का अवसर मिला ।

श्रमिक समस्याएं:

औद्योगिक क्रान्ति ने अनेक श्रमिक समस्याओं को जन्म लिया । आरंभिक दौर में अधिकतर मजदूर गावों से शहरों की ओर आये । लम्बे समय तक ग्रामीण लोगों का शहर की ओर पलायन चलता रहा । यह किसी योजना के हिसाब से नहीं हुआ । परिणामत: अनेक औद्योगिक ईकाइयों के आसपास श्रमिक गन्दे और छोटे-छोटे कमरों या झोपड़ियों में रहने लगे । इन श्रमिक बस्तियों से अनेक समस्याओं का जन्म हुआ ।

उद्योगों में बड़ी संख्या में बच्चों और महिलाओं को इस कारण नौकरियां दी गयी क्योंकि इन्हें कम वेतन देकर इनसे अधिक काम लिया जा सकता था तथा इनको नियंत्रण में रखना आसान भी था । लेकिन यह श्रमिकों के शोषण का सबसे आसान तरीका था जिसके विरूद्ध आवाज उठी । लम्बे समय तक इनसे काम लेने से, काम के घंटे पहले से निर्धारित न होने से तथा आवास की समस्याओं के कारण श्रमिक बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य, पर बुरा असर पड़ा । बाद के दशकों में निम्नतम आयु निश्चित कर दी गयी, उन्हें आराम दिलाया गया तथा बच्चों और महिलाओं की स्थिति सुधारने की दृष्टि से अनेक श्रम कानून बनाए गये ।

औद्योगिक क्रान्ति के आरंभिक दशकों में श्रमिक असंगठित थे, अपने अधिकारों से परिचित न थे और इसी से उनका शोषण लगातार किया गया । मिल मालिक जब चाहते थे उन्हें नौकरी पर रखते थे और जब चाहे नौकरी से हटा देते थे । नौकरी के स्थायी न होने से श्रमिकों की स्थिति और भी कमजोर हो गयी, बीच-बीच में अनेक मजदूर बेरोजगार होने लगे । अनेक बार गांवों से अधिक संख्या में लोग शहर आ जाते थे और ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर मिल मालिक किसी भी मजदूर को हटा देता था । बाद के वर्षों में श्रमिक संगठन हो गये और नियम भी बने । सरकार ने श्रमिकों के पक्ष में हस्तक्षेप किया ।

औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने के पश्चात अनेक वर्षों तक श्रमिकों का शोषण होता रहा । मिल मालिक भारी मुनाफा कमाते रहे, और श्रमिकों के हितों की उपेक्षा करते रहे । अनेक दशकों तक यही स्थिति चलती रही । उन्नीसवीं सदी के मध्य में ब्रिटेन में चार्टिस्ट आन्दोलन हुआ जिसने श्रमिकों को संगठित किया । उन्नीसवीं सदी के मध्य में समाजवाद का उदय होने से मजदूरों में नयी जागृति आयी । उनको संगठित करने के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये । इसके फलस्वरूप मजदूरों की स्थिति सुधरी ।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों से मजदूरों की स्थिति सुधारने में सरकार ने हस्तक्षेप किया । समय-समय पर ब्रिटिश संसद ने श्रमिक-अधिनियम बनाकर सबसे पहले बच्चों और महिलाओं को संरक्षण प्रदान किया, उनके काम के घंटे निश्चित किये गये, सप्ताह में अवकाश दिये जाने की व्यवस्था की गयी और उनको नौकरी पर रखने के नियम भी बने । समय-समय पर स्वीकृत इन श्रमिक अधिनियमों से धीरे-धीरे सभी श्रमिकों की स्थिति सुधरी ।

13.6 महत्व:

ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने जिस प्रकार के परिवर्तनों को जन्म दिया वह एक व्यापक प्रक्रिया थी और कुछ दशकों के पश्चात भाप की शक्ति के प्रयोग और उद्योगों में हुए मशीनीकरण से समूचे यूरोप में और फिर विश्व के अनेक देशों में इसी प्रकार के औद्योगिक परिवर्तनों का दौर आने वाले अनेक दशकों तक चलता रहा । ब्रिटेन ने औद्योगीकरण को शुरू करके क्रांति के मार्ग पर कदम बढ़ाया ।

ब्रिटेन में हुए इन औद्योगिक परिवर्तनों से सामाजिक सम्बन्धों पर गहरा असर पड़ा । ब्रिटेन में अठारहवीं शताब्दी तक सामन्तवादी वर्गों का जो दबदबा बना हुआ था वह उन्नीसवीं सदी से घटने लगा । औद्योगिक क्रान्ति ने मध्य वर्ग का प्रभुत्व बढ़ाया । व्यापार और उद्योग से जुड़े मध्यम वर्ग ने राजनीति और समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से कुछ श्रमिक वर्ग भी अपना प्रभाव ब्रिटेन में दिखाने लगे । समाज और

राजनीति में श्रमिकों का प्रभाव बाद के दशकों में यहां तक बढ़ा कि श्रमिकों का अलग से राजनीतिक दल गठित हो गया । 1832 और 1867 के संसदीय सुधार अधिनियमों से मध्य वर्ग तथा कुशल श्रमिक वर्ग का ब्रिटिश संसद में प्रभाव दिखायी दिया ।

औद्योगिक क्रान्ति से नये विचार पनपे । उदारवाद और उपयोगितावाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन औद्योगिक क्रान्ति की देन थी । वैन्थम, जौन स्टुअर्ट मिल, एडम स्मिथ और माल्थस आदि लेखकों के विचारों ने एक नई दार्शनिक विचारधारा को जन्म दिया । उपयोगितावादी विचारकों ने अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई का सिद्धान्त प्रतिपादित किया । इन्हीं विचारकों ने जनहित में नये कानूनों की वकालत की । इसी से उपेक्षित वर्गों के लाभ के लिये उन्नीसवीं सदी के मध्य से अनेक कानून बनाए गये । इसी समय यह सवाल भी उठाया गया कि क्या राज्य को हस्तक्षेप करने की छूट दे दी जाये । इसका उतर ब्रिटिश दार्शनिकों ने यह दिया कि केवल शिक्षा, स्वास्थ्य, जन कल्याण आदि जनसाधारण के लाभ के लिये सरकार अधिक से अधिक सक्रिय हो । लेकिन व्यापार के मामले में राज्य के हस्तक्षेप का इन्होंने विरोध किया । व्यक्ति के महत्व पर लगातार जोर भी दिया गया ।

13.7 औद्योगिक क्रान्ति का यूरोप में मन्द गति से प्रसार

फ्रांस की क्रान्ति के अन्त हो जाने के पश्चात जब यूरोप में शान्ति और राजनीतिक स्थिरता स्थापित हुई तथा कुछ देशों में औद्योगिक क्रान्ति का प्रसार हुआ ।

यूरोप में सबसे पहले बेल्जियम में औद्योगिक परिवर्तन हुए । ब्रिटिश पूंजीपतियों के सहयोग से 1830 से बेल्जियम में वाष्प की मदद से इंजन चलने लगे और मशीनीकरण तेज हुआ । 1870 तक यह छोटे सा देश औद्योगिक विकास का उदाहरण बन गया था ।

बेल्जियम के पश्चात फ्रांस में धीमी गति से यदि औद्योगिक क्रान्ति आगे बढ़ी तो इसका पहला कारण था यहां की राजनीतिक अस्थिरता जिसके फलस्वरूप उचित वातावरण न बन सका । दूसरा कारण था यहां के कृषकों का प्रभाव । फ्रांस के किसान पर्याप्त शक्तिशाली थे और उन्होंने कृषि को प्रधानता देने की नीति पर विश्वास बनाए रखा । 1834 से 1848 के बीच लुई फिलिप के शासन के दौरान औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत धातु और खदान उद्योगों में दिखायी दी । फ्रांस का मध्य वर्ग इसी अवधि में प्रभावी होता दिखायी दिया और इसने रेलवे के विकास तथा मशीनकरण में रूचि ली । 1850 से 1870 के बीच यह प्रक्रिया और भी तेज हुई । 1870 के आते-आते फ्रांस का उद्योग 1851 की तुलना में पांच गुनी अश्व शक्ति का प्रयोग करने लगा । फ्रांस में कोयले और लोहे की खपत भी इसी अवधि में तीन गुना हो गयी । फ्रांस के विदेश व्यापार में इस तक तेजी से विकास हुआ ।

जर्मनी में 1870 तक औद्योगिक परिवर्तन की गति फ्रांस से भी मन्द रही । इसका एक कारण यह था कि इस अवधि तक यहां राजनीतिक एकता का अभाव था । 38 छोटे-बड़े राज्य जर्मनी में थे । ये जर्मन राज्य औद्योगिक विकास की कोई समान नीति ने अपना सके । राजनीतिक समस्या को ध्यान में रखते हुए जर्मन राज्यों ने एक आर्थिक, संघ बना लिया । यहीं से औद्यौगिक विकास की नींव पड़ी । रेलवे तथा खादनों के विकास के उपाय शुरू किये गये ।

जर्मन एकीकरण 1870 में जब पूरा हो गया तो 1870 के पश्चात आर्थिक प्रगति हुई और नवोदित जर्मन राष्ट्र ने तेजी से औद्योगिक परिवर्तन की ओर कदम बढ़ाये ।

इटली और आस्ट्रिया में जर्मनी के बाद औद्योगिक विकास हुआ । बाद के वर्षों में भी इन दोनों में औद्योगिक प्रगति प्रभावशाली नहीं रही । रूस में तो उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भी मशीनीकरण ने गति नहीं पकड़ा । पूर्वीय यूरोप औद्योगिक परिवर्तन की दौड़ में उन्नीसवीं सदी में पीछे ही रहा ।

अमेरिका में उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में औद्योगिक विकास की धीरे-धीरे शुरूआत हुई । लगभग 1870 तक अमेरिका के उतरी भाग में पर्याप्त औद्योगिक विकास हो चुका था । इसके बाद के वर्षों में अमेरिका में औद्योगिक क्रान्ति की तेजी से प्रगति हुई और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिकी उद्योगों ने चमत्कारिक तरक्की करके यूरोपीय देशों में भी धाक जमा ली ।

13.8 सारांश:

इस-प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन में प्रारम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति धीरे-धीरे यूरोप, अमेरिका और विश्व के अनेक देशों में फैली । ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति का जिस ढंग से आरम्भ हुआ और जैसा इसका विकास हुआ तथा इसके परिणाम जिस प्रकार ब्रिटेन में देखे गये उनका महत्व है इसका विश्वव्यापी प्रभाव । औद्योगिक उत्पादन को दिशा देने का काम ब्रिटेन में हुआ । औद्योगिक क्रान्ति की सफलतापूर्वक आरम्भ ब्रिटेन में हुआ । इसी कारण देश में हुए सफल प्रयोग का विशेष महत्व है । अनेक दशकों तक ब्रिटेन के उद्योग उत्पादन के प्रतीक बने रहे और विश्व के राष्ट्र इनका अनुकरण करते रहे ।

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न:

(i) औद्योगिक क्रांति के कारणों की व्याख्या कीजिये ।

(ii) औद्योगिक क्रांति के आरम्भिक दौर पर प्रकाश डालिये ।

(iii) औद्योगिक क्रांति के दूसरे दौर की विशेषताओं का विवरण दीजिये ।

(iv) औद्योगिक क्रांति के क्या परिणाम निकले ।

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. केटलबी, सी.डी.एम - आधुनिक काल का इतिहास
2. सी.डी. हेजन - मॉडन यूरोप
3. बार्न्स- द हिस्ट्री आफ वेस्टर्न सिविलिजाइजेशन

MAHI-01/ISBN13/978-81-8496-260-4